प्रकाशक—

केदारनाथ गुप्त

मैनेजिङ्ग-प्रोप्राइटर

छात्रहितकारी-पुस्तकमाला

दारागंज, प्रयाग

प्रथम संस्करण सन् १९२२—१०००

द्वितीय „ फरवरी सन् १९२५—२०००

तृतीय „ दिसम्बर सन् १९२६—२०००

चतुर्थ „ दिसम्बर सन् १९२७—२०००

पंचम „ जनवरी सन् १९२९—३०००

मुद्रक—

पं० विश्वम्भरनाथ वाजपेयी

ओंकार प्रेस,

इलाहाबाद

भूमिका.

महात्माओंसे तथा अन्य विद्वज्जनोंसे सविनय निवेदन है कि यह ग्रन्थ पक्षपातरहित है और निज उक्ति रहितहै । जो कुछ पूर्वाचार्योंका सिद्धांत और शास्त्रपुराण तथा उपनिषदोंका मतहै वही प्रमाण छांटकर सबके दृष्टि-गोचर करेहैं । वर्तमान समयमें अपनी अपनी सब गातेहैं और पूर्वाचार्य तथा ऋषि मुनियोंके वाक्योंपर न तो ध्यान देतेहैं और न धारणा है केवल मुखसे कथनमात्र है हमें भी ऐसे महात्माओंके बहुत दर्शन हुए हैं कि जिनके केवल वाचकज्ञान है और धारणा कुछ नहीं पराये छिद्र देखतेहैं तुम्हें पराई क्या तुम अपना सुधारो क्या वेदांती क्या योगाभ्यासी क्या संप्रदायी आपसमें विरोध करतेहैं और कोई कोई तत्त्वदर्शीको देखा तो उनके निकट वेदांती सम्प्रदायी कोई भी हो किसीसे वैर नहीं सबकी सुनतेहैं सो यह ग्रंथ हमने अपने कालक्षेप और चित्तनिरोधके लिये बनाया है कृपाकर इसमें कोई बात न बनी होय तो विद्वज्जन क्षमा करें और भक्ति निष्ठ परमज्ञानी मित्रवर लाला राधाकृष्णशरण महाजन जानकीप्रसादात्मज रईस तिलसारी-निवासी हाल मुकाम गोसाईंके श्यौराजपुर निवासीको हम धन्यवाद देतेहैं कि जिनने इस ग्रन्थमें जितने ग्रन्थसम्मतिको चाहने परे वे और द्रव्य भी दिया श्रीविहारीजीका मन्दिर लक्षमुद्रा लगाय जिनने बनवाया और जो सन्तमंडलीमें सुशोभित रहतेहैं ये हमारे परममित्र सत्संगी हैं इन्होंने ग्रन्थ बनानेमें सहायता दीहै सज्जन ग्रन्थको आदिसे अंततक अवलोकन करें ।

सज्जन दर्शनाभिलाषी,

पं० प्रियादासशुक्क.

चौबेपूर,

भारत-वीर.

श्रीजुम्मादादा-व्यायाम-मन्दिरके संस्थापक व संचालक

आदर्श बालब्रह्मचारी नरकेसरी

राजरत्न प्रो० माणिकराव-वडोदा.

श्रीराधामाधवौ जयतः।

ग्रंथकर्ताका संक्षेप जीवनचरित्र।

सविनय महाजनोंके अर्थ निवेदनहै ग्रंथकर्ता मेरे ज्ञानोपदेशक कि गुरु हैं उनके मुखसे ज्ञान सुन मैं श्रीलडैतीजीकी भक्तिका सुख अहर्निश लूट रहाहूँ यह हमारा परम भाग्यहै इन महाराजका आगमन संवत् १९५२ माघ मासमें हुवा और आपने रामदयाल गौडकी दुकानपर छः मास निवास कर हमें अनायास दर्शन दे कृतार्थ किया उसी समय महाराजकी हस्तलिखित पोथी कि जिसमें उन्होंने अपना जीवनचरित्र अर्थात् जिसमें जो जो दुःख सुख आदिकी वार्ता लिखीहै वह हमारे हाथमें परी हमारी इच्छा बहुत दिनोंसे थी कि इसे छपावें परंतु आज श्रीविहारीजीने अवसर पूर्णकिया कि इस बडे ग्रंथके साथ छपजायगा इसका कारण यह कि प्रथम भी इन्ही नामोंके महात्मा भयेहैं और होंगे तो उनके निश्चयके लिये हमने महाराजकी आज्ञा मांग और लिख कर ग्रंथमें मिलायाहै गंगा यमुनाके मध्य और श्रीभागीरथीके समीप एक प्राचीन अनादिकालसे विख्यात ब्रह्मावर्त्त क्षेत्र है जिसे इस समय बिठूर बोलतेहैं महर्षि वाल्मीकिजीने इसी जगह तप किया है और यहीं श्रीजानकीजीसे लव कुशका जन्म हुआहै और इस क्षेत्रसे पश्चिम दिशामें आधायोजन अर्थात् दो कोशपर एक वह चौबेपुर ग्रामहै कि जहाँ माखनलाल पाँडेकी स्थापितकी श्रीकृष्णलीलाहैं इसी ग्राममें ग्रंथकर्ताका जन्म है इनके पूर्वजोंका हाल सुनो कि कान्यकुब्जोंमें तरीके शुक्ल श्रीयुत साहिबलालजी हुएहैं और सैलह गाँव इनके जन्मस्थलसे चारकोस पश्चिमहै और इनके पुत्र शुक्ल श्रीजवाहिरलालजी उनके पुत्र शुक्ल श्रीयुत दुर्गाप्रसादजी हुएहैं ये निंबार्कसंप्रदायके शिष्य हुये हैं ये ग्वालियरमें किसी पलटनमें नौकरथे परंतु संतोंके संगमें रहते थे और इनके गुरु इन्हें गीतगोविंद पढाया करतेथे इसमें इनकी बडी प्रीति थी और

सुख लूटा और वहां ही श्रीराधावल्लभ संप्रदायके आचार्यवर्य श्री १०८ श्रीगोस्वामी श्री हित हरिवंश जी हुये तिनके छोटे पुत्र श्रीमहाराज श्रीहित गोपीनाथजी और दिव्यवनमें इन्हके ही वंशमें श्रीगोस्वामी परमदयालु जगदुद्धारक श्रीहित गिरधरलालजी महाराज हुए। इन्होंने कहा कि तुम्हारी श्रीजीमें इतनी प्रीति और फिर भी तुम अन्यतिलकवाले और लक्ष्मीनारायण नामवाले कैसे, जैसी प्रियाजीमें तुम्हारी प्रीति है वैसाही तुम्हारा नाम भी प्रियादास चाहिये यह सुन इन्होंने दण्डवत् प्रणामकी और प्रार्थना की कि कृपा कर मुझे तिलक कंठी प्रदान कीजिये यह सुनकर तिलक कंठीभी दी और प्रियादास नाम भी रक्खा उस दिनसे इनका प्रियादास नाम विख्यात हुआ फिर इन्होंने ग्रंथोंका बनाना शुरू किया तो तेरह पुस्तकें बनाईं। प्रथम प्रिया रसिकविनोद जिसमें गान वियाहै इसके अनंतर दानलीला मानलीला आदि अनेक ग्रंथ रचे हैं ये ग्रंथ बंबईमें छपवाये हैं फिर संस्कृतमें निकुंजदेवीस्तवराज तथा राधाष्टक रचे फिर भाषामें वर्षानाशतक, १ अनुरागशतक २ दोहावली ३ ब्रजरसकवितावली ४ भक्तिज्ञानानन्दामृतवर्षिणी ५ वृन्दावनतत्त्व रास ६ अजइन्दुमतीनाटक ७ विवेकार्कप्रकाश ये ग्रंथ रचे अनंतर यह शास्त्रसारसिद्धांतमणि नाम ग्रंथ रचा यह अनेक ग्रंथोंके प्रमाणसे इसे रचाहै और इस सुन्दर ग्रंथकी भाषा टीका भी बनाई ये सब ग्रंथ बनाकर फिर देशाटन और विद्योपार्जन भी किया और छतरपुर तथा चरखारी राजद्वारमें चार २ मास निवास कर राजाको सत्संगसे और कृष्णभक्तिसे आह्लादित किया और इन राजाओंसे विधिवत् संमान मिला फिर इन्होंने शास्त्रोंके अवलोकन पर चित्त स्थिर कर देशाटनसे चित्त का उपराम कियां। अबतो केवल श्रीलाडिलीलालकी लीला नाम धाम के अनुभवमें मग्न रहतेहैं और ब्रज बासियोंमें अत्यंत प्रीति रखतेहैं और संतजनोंको अपना सर्वस्व समझते हैं और आप स्वदेशभाषाके अलावा गुजराती मरहटी गुरुमुखी बंगला तैलंग इत्यादि भाषाओंसे भी परिचित हुए

अनुरोध करें। आप का बच्चा निस्सन्देह तेजस्वी होगा, निरोग होगा, साहसी होगा, दीर्घजीवी होगा और सच्चा देश-भक्त निकलेगा।

यह ग्रन्थ पूर्ण मौलिक है। इसके लेखक स्वामी शिवानन्द नाम के एक युवा गृहस्थ सन्यासी हैं। लगभग ७ वर्ष पूर्व हमारा और आपका परिचय पहले पहल मिर्जापुर में हुआ था। मिरज़ापुर में आप क़रीब ३ वर्ष रहे। पाठशाला से जब हमें सावकाश मिलता था, तो प्रायः हम आप के पास जाया करते थे। आप की आयु इस समय (सन् १९२२ में) ३२ वर्ष की है और यद्यपि आप का विवाह हो गया है किन्तु आप पूर्ण ब्रह्मचर्य्य का पालन कर रहे हैं*।

स्वामी जी के विचार, स्वामी जी का रूप और स्वामी जी की दिन-चर्य्या इत्यादि को देखकर आपके प्रति हमारे हृदय में बड़ी श्रद्धा उत्पन्न हुई। सौभाग्यवश आपकी भी हमारे ऊपर बड़ी कृपा हुई। अन्योन्य प्रसन्नता से हमारा और स्वामी जी का सम्बन्ध और भी अगाढ़ हो गया और हमारे जीवन में आप के सत्सङ्ग से बहुत परिवर्तन हुआ।

---

*अब स्वामी जी की धर्मपत्नी का ता० २९ फरवरी १९२६ शुक्रवार के दिन 'स्वर्गवास' हुआ है। आप बड़ी ही सत्यशील सती देवी थीं। आप पतिव्रता स्त्रियों में मूर्तिमान् आदर्श थीं। मृत्यु के समय 'माताजी' की आयु केवल २५ वर्ष की थी। हमने 'माताजी' को प्रत्यक्ष देखा था इस कारण विशेषतः हमें यह अशुभ समाचार सुनकर बहुत ही दुःख हुआ है। परमात्मा इस सती की आत्मा को पूर्ण शान्ति और स्वामी जी को पूर्ण धैर्य प्रदान करे।

—सम्पादक

इस जीवन चरित्रमें नहींलि खे क्योंकि महाराजने कहा इनका लिखना क्याहै ये तो सब देहके धर्म हैं बस अभी इतना जीवनचारित्रहै फिर पूरा आगे काव्यद्वारा कभी छपावेंगे कानपूरजिला के पश्चिम आठ कोशपर चौबेपुर है वहां आपका वर्तमानमें निवास है और हमारे ऊपर अति अनुग्रह करतेहैं जीवनचारित्र लिखित। शिष्यवर्ग.

चंपकलताशरण।

(लश्कर) ग्वालियर.
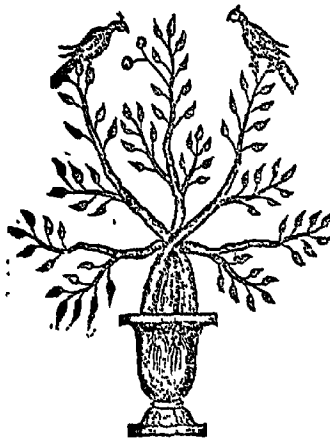
छात्रहितकारी पुस्तकमाला

के

स्थायी ग्राहक बनने के नियम

(१) इस ग्रन्थ माला में नवयुवकोपयोगी सदाचार स्वास्थ्य, नीति तथा चरित सम्बन्धी मौलिक तथा अनुवादित पुस्तकें प्रकाशित की जाती हैं।

(२) इसमें इतिहास, जीवनी, उपन्यास, नाटक गल्प, तथा, अन्य साहित्यिक पुस्तकें प्रकाशित की जाती हैं जो उपर्युक्त उद्देश्य की पूर्ति करें।

(३) प्रत्येक सज्जन ॥) पेशगी जमा कर इस ग्रन्थमाला के स्थायी ग्राहक बन सकते हैं। उन्हें प्रत्येक प्रकाशित पुस्तक पर एक चौथाई कमीशन दिया जाता है।

(४) पहले की प्रकाशित पुस्तकों का लेना अथवा न लेना ग्राहकों की इच्छा पर निर्भर है। परन्तु भविष्य में प्रकाशित होने वाली पुस्तकों का लेना आवश्यक होगा। यदि सूचना पाते ही सूचित कर देंगे तो वह पुस्तक न भेजी जायगी।

मैनेजर-छात्रहितकारी पुस्तकमाला, दारागंज, प्रयाग

॥ श्रीः ॥

॥ श्रीराधावल्लभो जयति ॥ ॥ श्रीहितहरिवंशचंद्रो जयति ।

शास्त्रसारसिद्धान्तमणि

भाषाटीकासहित.

गुरुप्रकरण १.

॥ मंगलाचरण श्लोक ॥

ॐ, वन्दे नवघनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ।
सानंदं सुंदरं शुद्धं श्रीकृष्णं प्रकृतेः परम् ॥ १ ॥
श्रीराधे करुणापारे कोटिपूर्णेन्दुभानने ।
मंगलं कुरु मे नित्यं नंदलालेन लालिते ॥ २ ॥
ॐ, नमामि राधिकाकृष्णौ नित्यं वृन्दावनेश्वरौ ।
भूमिभारहरार्थाय लीलामानुषविग्रहौ ॥ ३ ॥
अक्षरं परमं ब्रह्म ज्योतीरूपं सनातनम् ।
गुणातीतं निराकारं स्वेच्छामयमनंतकम् ॥ ४ ॥
भक्तानां ध्यानसेवार्थं नानारूपधरं वरम् ।
शुक्लरक्तपीतश्यामं युगानुक्रमणेन च ॥ ५ ॥

प्रार्थना ।

नाहं त्वदीयचरणाम्बुजयुग्मकोशाज्जाने कदापि व्रजवल्लविसेव्यमानात् । नान्यावलंबनगतिस्त्वमतो हि मह्यं श्रीराधिके नवनिकुंजगृहं प्रदेहि ॥ ६ ॥

विषय				पृष्ठांक
५ सद्ग्रन्थावलोकन	...	...	...	८८
६ घर्पण-स्नान	...	...	...	९०
७ सादा व ताज़ा अल्पाहार		...	...	९६
८ निर्व्यसनता	...	...	...	११९
९ दो बार मलमूत्र त्याग		...	...	१२०
१० इन्द्रिय स्नान	...	...	...	१२२
११ नियमित व्यायाम	...	...	...	१२४
१२ जल्दी सोना व जल्दी जागना		...	...	१३१
१३ प्राणायाम	...	...	...	१३६
१४ उपवास	...	...	...	१३९
१५ दृढ़प्रतिज्ञा	...	...	...	१४१
१६ डायरी	...	...	...	१४४
१७ सततोद्योग	...	...	...	१४६
१८ स्वधर्मानुष्ठान	...	...	...	१४७
१९ नियमितता	...	...	...	१४९
२० लंगोटबन्द रहना	...	...	...	१५१
२१ खड़ाऊँ	...	...	...	१५१
२२ पैदल चलना	...	...	...	१५२
२३ लोकनिन्दा का भय	...	...	...	१५३
२४ ईश्वर भक्ति	...	...	...	१५५
२५ नित्य नियमावली का पाठ		...	...	१५८
१९ सम्पूर्ण सुधारों का दादा ब्रह्मचर्य्य		...	...	१५८
२० हमारी भारत-माता	...	...	...	१६१
परिशिष्ट (योग-चिकित्सा)		...	...	१६५

भाषार्थ—हेगुरुजी महाराज आप कैसे हो कि (अतंबंधो) कहिये दीन-पुरुषोंके सहाय करनेहारेहो (भवार्णवे) कहिये यह संसाररूप एक समुद्र है सो कैसा भयका जामें जन्ममरन यह महाक्लेश सो समुद्रके पार जैसे बिना जहाज कोई नहीं जासक्ता तैसे यह संसार समुद्र भी तरना अत्यंत दुस्तर (कठिन) है वहां समुद्रमें जैसे मकर घडियालआदि नाना प्रकारके जीव हैं तैसे संसारसमुद्रमें काम क्रोध लोभ मोह ये ही मकरादिजीवको दुःख देनेवारे जैसे समुद्रमें वडवानल जलको शोषताहै तैसेही संसारसमुद्रमें (तृषा-नले) कहिये तृष्णा यही वडवानल है जैसे समुद्रमें भँवर उठैहैं तैसे संसा-रसमुद्रमें (मोहविवर्तसंकुले) अज्ञानरूपी भँवर उठैहैं तामें संसारी जीव बूडैं उछरैंहैं अर्थात् मनुष्ययोनिते कीटपतंगयोनिनमें भ्रमैंहैं सो हे कृपानाथ ! ऐसे घोरसंसाररूपसमुद्रमें पडा नाना क्लेश सहताहै जीव तासे निकलनेका कोई साधन (उपाय) बताइये जामें जिसके आश्रय होकर इसे पार होऊं जो हेगुरुजी जो मैं इसका अधिकारी होऊं तब कृपाकर कथन करिये इति या(प्रकार) शिष्यके आर्त वचन सुन परम उदार ज्ञानवान् गुरु ता शिष्यके प्रश्नका समा-धान अनेकशास्त्र पुराण श्रुतिस्मृतिरहस्यके प्रमाण दे कर्म ज्ञान भक्ति योग सत्संगादि तथा गुरुधर्म इनके द्वारा संसारसे निवृत्तहोनेका उपाय कथन करते हैं ताको जिज्ञासु शांतमनचित्त एकाग्रकर श्रवण कर मननकरे।

गुरुरुवाच ।

श्लोक—संसारदुष्पारमहोदधौ नृणां तुंबीवदेवोर्ध्वमधश्च मज्जताम् ॥
गोविंदपादांबुरुहैकचिंतनं पोतं वदंतीह दृढं विपश्चितः॥२॥

भाषार्थ—हेशिष्य ! (संसारेति) इस संसाररूपीसमुद्र दुष्पार याने याके पार होना अतिकठिनहै तामें यह जीव (तुंबीवत्) कहे तूंबीफलकी नाईं बूडते उछलते भ्रमते तासें समुद्रसे पार जहाजद्वारा पुरुष जाता यहां संसार समु-द्रके पार होनेका उपाय केवल एक गोविंद जो परमात्मा तिनके चरणनमें प्रीति
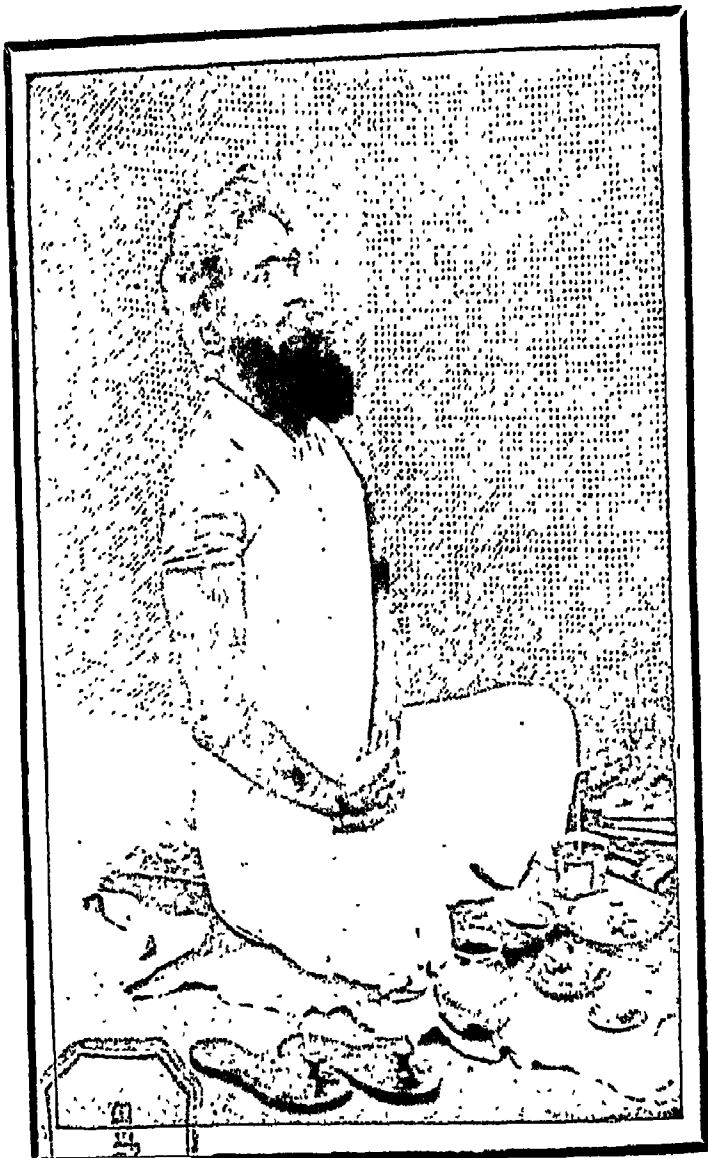
श्रीमत् स्वामी शिवानन्द महाराज,

आश्रम-वरूड, (जि० अमरावती ।)

P.O.-WARUD. (Dist. Amraoti.)

नारदपंचरात्रे ।

श्लोक-गुरूपदेशरहितस्स्वीयप्रज्ञासमन्वितः ।
घृताजपुच्छसंत्यक्तगोपुच्छ इव मज्जति ॥

भाषार्थ-जिसने गुरुसे उपदेश नहीं लिया और शास्त्रपुराण बाँच स्वयं याने आपही ज्ञानवान अपनेको समझ जो मनमें आया सोई किया शास्त्रका आशय तो केवल गुरुहीसे मिलता है फिर उनकी कुगति याप्रकार होती यथा गंगादि नदके पार जानेवाले गाईकी पूंछ परित्यागकर याने बकरेकी पूंछद्वारा पार कब जाय सकैंगे तासे शास्त्रके आशय ज्ञाता गुरुद्वारा जानना चाहिये ताको प्रमाणभी है सो श्रवणकर ।

पद्मपुराणे ।

श्लोक-एवं शास्त्राशयं ज्ञात्वा श्रीगुरौ दृढनिश्चयः ।
गृह्णीयाच्छ्रीगुरोर्मंत्रं श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ॥

भाषार्थ-कहेभयेकी तरह जो जिज्ञासू, शास्त्रका जाननेवाला ज्ञाता शांतिव्रत ऐसा गुरुको जो आश्रय करता और श्रीमंत्रका उपदेश लेताहै उसीका कल्याण याने अविद्यारूपी अन्धकार जो नेत्रोंमें है ताको नाश करदेताहै ताको प्रमाणभी सुनो ।

महाशिवसंहितायाम् ।

श्लोक-अज्ञानतिमिरांधस्य ज्ञानांजनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

भाषार्थ-अज्ञान सोई तिमिर याने अन्धकार अन्तस नेत्रोंमें छारहाहै ताके निवृत्यर्थज्ञान अञ्जनरूपीहै सोदिव्यचक्षू होजाते तैसेही अन्तसके नेत्रोंको यह ज्ञान अंजन है सो अंजन गुरुकी कृपासे मिलताहै तासे प्रथम गुरुकरके तासे ज्ञानोपदेश ले । प्रमाण-

योगवासिष्ठे ।

श्लोक-उपदेशक्रमो राम व्यवस्थामात्रपालनम् ।
ज्ञप्तेस्तु कारणं श्रद्धा शिष्यप्रज्ञैव केवलम् ॥

है; उसमें शक्ति, तेज, निश्चय, सामर्थ्य, पुरुषार्थ, बुद्धि, सिद्धि और ईश्वरत्व प्रगट होने लगते हैं और वह दीर्घकाल पर्यन्त जीवन लाभ कर सकता है। वीर्य हीन पुरुष को कोई भी तार नहीं सकता और वीर्यवान पुरुष को कोई भी (रोग) अकाल में मार नहीं सकता! दुर्बल को ही सब कोई सताते हैं। "दैवो दुर्बलघातकः" यही प्रकृति का नियम है। सच पूछिए तो "वीर्य्य ही अमृत* है।" इसी के रक्षा करने से अर्थात् धारण करने से मनुष्य अजर अमर होता है। भीष्म पितामह इसी संजीवनी शक्ति के कारण अमर (यानी अकाल में मृत्यु न पाने वाले) और इतने सामर्थ्य-संपन्न हुए थे। यदि हम भी इस की रक्षा करें अर्थात् वीर्य रोक कर ब्रह्मचर्य धारण करेंगे, तो हम भी वैसे ही प्रभावशाली और उन्नतिशाली बन सकते हैं। क्योंकि वीर्य रक्षा ही आत्मोद्धार का रहस्य है और इसी में जीवमात्र का जीवन है।

इस ग्रन्थ में वीर्यरक्षा सम्बन्धी जो अनूठे और स्वानुभूत नियम बतलाये गये हैं वे बहुत ही अनमोल हैं! स्वतः अनुभव किये होने के कारण वे अत्यन्त ही सिद्ध हैं—रामबाण हैं—कभी भी निष्फल होने वाले नहीं हैं। केवल नियम ही भर पढ़ लेने से मनुष्य वीर्यरक्षा करने में निःसन्देह समर्थ हो सकता है, परन्तु यदि वह इस ग्रन्थ को "आद्योपान्त" पढ़ लेगा तो वह उन नियमों का मर्म भली भाँति समझ जायगा और उसमें वीर्यरक्षा के लिये एक अद्भुत जोश पैदा होगा, जिससे वह उन्नति अवश्य करेगा। आप स्वयं अनुभव करके देख लीजिये।

क्या तुम जीवित रहना चाहते हो? तब फिर तुम्हें अवश्य ही वीर्य के नाश से बचना होगा और इस ग्रन्थ में दिये हुये नियमों

---

*शास्त्र में अमृत का रूप 'शुभ्र' वर्णन किया है।

मायासे और किसीको निश्चयरूपी पियास नहीं शांतहुई इसीतरह विवादकी शांतिके लिये न्यायशास्त्र बना परंतु तौभी न निश्चय हुआ तासे हेसत्यवती सुत! तुम श्रीकृष्णमहाराजका चरित्र वर्णनकरो जासे जीवका कल्याणहो यह सुन श्रीव्यासजीने नारदमुनिसें कहा जाको वेद भेद नहीं जानता प्रमाण शेषसंहितामें याम् "जानति नैव गतिं यस्य श्रुतिपुराणंब्रह्मेश्वरादि यत्पादेकरोति ध्यान" इत्यादिसे सिद्धहुआ कि जाके चारित्रको वेद नहीं जानते न ब्रह्मा महादेवके ध्यान में आते ताको हम कैसे वर्णन करें यह सुन श्रीनारदमुनिने व्यासजी महाराजसे कहा कि हमने जो गुप्त रहस्य श्रीनारायणके मुखसे सुनी ताको हम तुम्हारे प्रति चार श्लोकमें कहैंहैं सो सावधान हो श्रवण करो तब नारदजीनें चतुःश्लोकी भागवत जासे कहा।

चतुःश्लोकी भागवत।

श्लोक—ज्ञानं परमगुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम्।
सरहस्यं तदंगं च गृहाण गदितं मया॥ १॥

अर्थ—श्रीनारायणहिरण्यगर्भ प्रति बोलेकि अनुभव सहित तथा रहस्यसहित परम गुह्य ये ज्ञानमैं तुमसे कहताहूं सो तुम ग्रहणकरो यह कल्याणका हेतुहै।

श्लोक—यावानहं यथाभावो यद्रूपगुणकर्मकः।
तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात्॥ २॥

अर्थ—जैसे मैं अपरिच्छिन्न हूं ऐसेही मेरा सच्चिदानंदरूप तिस्में मेरेमें सर्वसत्त्वादिक गुण हैं तैसाही मेरा जगत् उत्पन्न करना ये मेरा कर्म है जैसा मेरा स्वभाव है तैसी तत्त्वविज्ञानसहित मेरी निर्हेतुक कृपा है।

श्लोका—अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योवशिष्येत सोस्म्यहम्॥ ३॥

भाषार्थ—अब भगवान् ज्ञान कहैंहैं सत् कहे चेतनरूपी आत्मा और असत्य जे जड़ पदार्थरूपी माया ये आत्मासे जुदा है सृष्टिके पहिले मैं एकही था पीछे

सो याप्रकार हेव्यासजी हमारे प्रति कही सो हम तुमकूं सुनाई यह जान अब अवताररहस्य लीला भगवत्की कथन करो जासे प्राणिनका श्रवण कर कल्याण हो यह सुन व्यासजी परम आनंद हुए और श्रीव्यासजीने नारदको प्रणामकिया सो हे शिष्य याप्रकार नारदजी व्यासजीको उपदेश दे अब हरिगुणगानकरते ब्रह्मलोकको गये यहां श्रीव्यासजीने नारदके उपदेश पाय श्रीमद्भागवतमहापुराण रचा ताके श्रवणसे मनुष्यका जन्ममरण छूटजाता सो अठारह हजार ग्रंथ है सो देखो शिष्यको विना गुरुके तत्त्वरहस्यका बोध नहीं होता जैसे हजार पत्थरके टूकमें मिला पडा हीरा ताको जौहरी भिन्न करता सो ये सब गुरुद्वारा प्राप्त है।

श्लोक-तस्माद्गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रये॥ ८॥

भाषार्थ-हेशिष्य जो जिज्ञासु संसारसे निवृत्त हुआ चाहे तो प्रथम गुरु कर फिर कुछ काल गुरुके समीप रह उनकी सेवाकर उनसे सदसंतपदार्थका निश्चयकर शब्दके परे जो ब्रह्म ताको गुरुद्वारा जानना ये जिज्ञासुके धर्म हैं और गुरु भी अधिकार जान तत्त्वउपदेश दे विना गुरुके अंतर्यामी अंतसमें है विन लक्ष कराये नहीं जानाजाता यथा गुप्तधन गृहमें गडाहै परताके भेदी विना नहीं प्राप्तहोता और पुरुष मारामारा फिरताहै तैसेही विना सद्गुरु अंतर्यामीकी प्राप्ति नहीं तहां एक बनियाँका (इतिहास)-किसी नगरमें एक बनियाँ था जो उसके पिता बाबा धनी थे बाद उनके मरनेके वह लैरका जो कुछ धन था सब खर्चकर डाला एक रोज बहुत तकलीफ बैठे विचार किया कि लावो अपने पिताके कागज लिखे देखें सायंद कहीं कुछ तगादा हो तो वही लेकर निर्वाह करैं यह विचार कर जो कागज खोले तो तिनमें एक जगह लिखा था कि अमुकमास अमुकपक्ष अमुकतिथि अमुक घडीदिन चढे पूर्वकी तरफ दो लक्ष मुद्रा (रुपये) शिखरमें धरेहैं यह बाँच मजूर बोलाय शिवालाकी शिखर

हमारे "ब्रह्मचर्य का ह्रास" ही है। ब्रह्मचर्य के नाश से ही हमारा संपूर्ण सत्यानाश हो गया है। हमारा सुख, आरोग्य, तेज, विद्या, बल, सामर्थ्य, स्वातन्त्र्य और धर्म सम्पूर्ण हमारे ब्रह्मचर्य के ऊपर ही सर्वथा निर्भर है। ब्रह्मचर्य ही हमारे आरोग्य-मन्दिर का एक मात्र आधारस्तंभ है। आधारस्तंभ के टूटने से जैसे सम्पूर्ण भवन ढह जाता है, वैसे ही वीर्यनाश होने से संपूर्ण शरीर का भी नाश अति शीघ्र हो जाता है। जैसे जैसे हमारे ब्रह्मचर्य का नाश होता है, वैसे वैसे हमारा स्वास्थ्य का भी नाश होता जाता है। "मरणं विन्दुपातेन जीवनं विन्दुधारणात्।" यह भगवान् शंकर का अमिट सिद्धान्त है। वीर्य को नष्ट करने वाला पुरुष कभी बच नहीं सकता और वीर्य को धारण करनेवाला कभी अकाल में मर नहीं सकता। तत्वतः व वस्तुतः ब्रह्मचर्य ही जीवन है और वीर्यनाश ही मृत्यु है। ब्रह्मचर्य के अभाव से हम किसी अवस्था में सुखी और उन्नत नहीं हो सकते। ब्रह्मचर्य ही हमारे इह लोक व परलोक के सुख का एक मात्र आधार है। यही नहीं किन्तु ब्रह्मचर्य ही हमारे चारों पुरुषार्थों का मुख्य मूल है—मुक्ति का प्रदाता है। वीर्य अत्यन्त अनमोल वस्तु है। इसी वीर्य के बल पर मनुष्य देवता बनता है और उसके नाश से वह पूर्ण पतित बन जाता है। विना ब्रह्मचर्य धारण किये हुए कोई भी पुरुष कदापि श्रेष्ठ पद को प्राप्त नहीं कर सकता। वीर्य-भ्रष्ट पुरुष कदापि, पवित्रात्मा, धर्मात्मा व महात्मा नहीं हो सकता। विना ब्रह्मचर्य के प्रत्यक्ष इन्द्र भी तुच्छ और पददलित हो सकता है तब फिर सामान्य मनुष्यों की बातही क्या है? अतः ब्रह्मचर्य ही हमारी सम्पूर्ण विद्या, वैभव और सौभाग्य का आदि कारण है! ब्रह्मचर्य ही हमारी श्रेष्ठता, स्वतंत्रता

गुरुके विषे मनुष्यभावना नहीं तो करना नहीं प्रायश्चित्त करना होगा तासे मैं आचार्यरूपसे धर्मके स्थापनार्थ अवतारधारण करताहूं । पुनः गीतायाम् ।

श्लोक—यदायदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

भाषार्थ—याने हे अर्जुन जबजब ज्ञान और धर्मका लोप होताहै तबतब मैं आचार्यरूप धारणकर ज्ञानोपदेशद्वारा रक्षा करताहूं ताते गुरुको मेराही रूप जान सेवनकर हेशिष्य ऐसे श्रीकृष्णमहाराजनेभी अर्जुनको गुरु करनेके हित उपदेश दिया ताते शिष्यकी गुरुविना गति नहीं सो पुनः कहतेहैं ।

श्रुतौ ।

श्लोक—यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशंते महात्मनः ॥

भाषार्थ—हेशिष्य ! देखो जिज्ञासु जिस देवताकी उपासना करे तैसाही गुरुभी उसी देवताको उपासक जो गुरु हो तासे उपदेश ले तब वो गुरु उसका तत्त्व अर्थ प्रकाश करैगा जैसे कोई स्थान ग्रामको जाया चाहौ तो वहांका हाल और मार्ग वही कहेगा जो वहांका हाल जानताहै और नहीं बतासकता ऐसेही अपने इष्टदेवका धाम गुरुही द्वारा भेद मिलैगा ।

श्लोक—यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम् ।
नयनाभ्यां विहीनस्य दर्पणं किं करिष्यति ॥

भाषार्थ—शिष्य देखो विना गुरुके उपदेशरूपी ज्ञान विद्या पढ शास्त्र अवलोकनकर अर्थका अनर्थ समुझ नाना तरहके कुतर्क बादविवाद करने लगते शास्त्रमें जो तत्त्वरहस्य बातें विना गुरु नहीं मिलतीं तहां कहै कि जैसे नेत्रविहीन पुरुष दर्पण ले तामें अपना प्रतिबिंब देखा चाहताहै यही उसकी अज्ञानता है ।

३—हस्तमैथुन और उसके दुष्परिणाम

आजकल समाज में उपर्युक्त अष्ट मैथुनों के अलावा और भी एक मैथुन नवयुवकों में वड़े भीषणरूप से फैल गया है। इस मैथुन से तो वालकों का वड़ा ही भारी संहार हो रहा है; प्लेग और इनफ्लुएन्ज़ा से कहीं वढ़कर यह नया रोग नवयुवकों को जान से मार रहा है। यही नहीं, वल्कि वड़े-वड़े लिखे-पढ़े हुए लोग भी इस काल के कराल पंजे में 'मोहवश' जा रहे हैं। हा! यह वड़े ही दुर्भाग्य की वात है। इस महारोग से पिण्ड छुड़ाना प्लेग इन्फ्लुएन्ज़ा से भी महा कठिन हो गया है। इस महारोग को "हस्तमैथुन"❀ का रोग कहते हैं। यह रोग वड़ा ही भयानक है! यह राक्षस मनुष्य को वड़ी क्रूरता से विलकुल निचोड़ डालता है। यह भी एक प्रकार की स्त्री की नवविधा भक्ति ही है। फ़र्क़ इतना ही है कि परमात्मा की नवविधा भक्ति से मनुष्य की मुक्ति होती है और स्त्री की किंवा विषय की इस नवविधा भक्ति से मनुष्य को नरक की प्राप्ति होती है।

हस्तमैथुन के कारण जितनी हानियां उठानी पड़ती हैं यदि केवल उनके नाम ही लिखे जाँय तो एक छोटी सी पुस्तिका तैयार हो सकती है। हम यहां पर इस नष्टकारी कुटेव का संक्षेप में ही वर्णन करते हैं। किसी लकड़ी को घुन लगने से जैसे वह विलकुल खोखली पड़ जाती है वैसे ही इस अधम कुटेव से मनुष्य की अवस्था जर्जरीभूत होती है।

❀पापी मनुष्यों ने वीर्यनाश के बीसों तरीक़े निकाले हैं। वे सव अप्राकृतिक व महानिंद्य हैं। अतः वे सव हमने "हस्तमैथुन" में ही समाविष्ट किये हैं।

ब्रह्मांडपुराणांतर्गतोत्तरगीतायाम् ।

श्लोक—यावद्गुरुर्न क्रियते सिद्धिस्तावन्न लभ्यते ।
तस्माद्गुरुर्हि कर्तव्यो नैवसिद्धिर्गुरुं विना ॥

भाषार्थ—हेशिष्य देखो यावत् गुरु न बतावेगा तावत् कोई कार्य सिद्ध नहींहोता जैसे जंगलमें चन्दन है और भिल्ल ताके गुणको नहीं जानते उसे इंधनकर बारतेहैं जद किसीने उसका गुण बताय दिया तो आदरपूर्वक माथेमें लगाय उस्की सुगन्धते मग्न रहतेहैं तैसेही कोई अनुष्ठान करो विना गुरुके बिताये सिद्ध न होगा ताते गुरुद्वाराही कार्यकरै ।

श्लोक—एकाक्षरप्रदातारं यो गुरुं नैव मन्यते ।
श्वानजन्मशतं गत्वा चांडालेष्वपि जायते ॥

भाषार्थ—हेशिष्य देखो जो एक अक्षरभी बतावे सोभी गुरु है फिर सन्मार्गका बतानेवाला तो परम पूज्य गुरुहै जो पुरुष गुरुका भाव न मान उनके विषे गुरुताका सम्मान नहीं करते वे कोटिन जन्म श्वान (कुत्ता) चांडालकी योनि (शरीर) धारणकरतेहैं तासे जिज्ञासू प्रीतियुतहो गुरुकी सेवाकर यही तेरा सर्वोपरि उपाय संसारसे निवृत्तिकाहै ।

मणिरत्नमालायाम् ।

श्लोक—अपारसंसारसमुद्रमध्ये निमज्जतो मे शरणं किमस्ति ॥
गुरो कृपालो कृपया वदैतद्विश्वेशपादाम्बुजदीर्घनौका ॥

भाषार्थ—हेशिष्य देखो यह संसारसमुद्र रूप जाका पारावार नहीं सो ताके प्रार जानेको ऐसें समुद्रमें एक गुरुके चरणकी शरण सोई नौका ताके अवलम्बसेही एक भले पार जाय नहीं तौ और उपाय नहीं ताते शिष्य गुरुके चरणकी सेवा करे ते विना परिश्रम भवसमुद्र पार होजायगा, इति ।

उपदेशचिन्तामणौ ।

श्लोक—पितृगोत्रं यथा कन्या स्वामिगोत्रेण गोत्रिका ।
श्रीकृष्णभक्तिमंत्रेणाच्युतगोत्रेण गोत्रिकः ॥

में रोगों के कीटों से लड़ने की शक्ति होती है। वीर्य जितना ही पुष्ट व अधिक होता है उतने ही ये शुभ्र कोट महान् बलवान होते हैं और विष को भी पचा डालने की शक्ति रखते हैं। परन्तु ज्योंही वीर्य क्षीण होता है त्योंही ये कीट भी दुर्बल बनकर हैज़ा प्लेग, मलेरिया के कीटाणुओं से दब जाते हैं और फिर मनुष्य भी काल के गाल में प्रवेश करता है। ये वीर्यनाश के ही दारुण फल हैं।

हस्तमैथुन से जो वीर्यनाश किया जाता है उससे शरीर और दिमाग़ के समस्त स्नायुओं पर बड़ा भारी धक्का पहुँचता है। जिससे पक्षाघात, ग्रन्थिवात, सन्धिवात, अपस्मार-मृगी और पागलपन आदि भीषण रोगों की उत्पत्ति होती है। व्यभिचार तो सर्वथा निन्द्य है ही परन्तु उससे भी महानिन्द्य यह हस्तमैथुन का कर्म है। हस्त-मैथुन द्वारा वीर्य के निकलने से कलेजे में विशेष धक्का लगता है। जिससे क्षय, खाँसी, श्वास; यक्ष्मा और "हार्ट डिजीज़" नामक महा भयानक हृदय-रोग हो जाते हैं। हृद्रोग से ऐसे अभागे मनुष्य की कौन से समय में मृत्यु होगी इसका कुछ भी निश्चय नहीं होता। अकाल ही में वह मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। मस्तिष्क पर तो बिजली का सा धक्का लगता है। हस्तमैथुन से सिर फौरन हलका और खाली पड़ जाता है। स्मृति (याददास्त) सु-बुद्धि, प्रतिभा सभी चौपट हो जाते हैं और अन्त में ऐसा नष्ट-वीर्य पुरुष पागल सा बन जाता है। पागल-खानों में सौ में ९५ आदमी व्यभिचार और हस्तमैथुन के ही कारण पागल बने होते हैं। यही हालत अपनी स्त्री से अति रति करने वालों की भी हुआ करती है।

-टारेन्टों के डाक्टर बर्कमन कहते हैं "सैकड़ों पागलखानों की जाँच करने पर हमें यही ज्ञात हुआ कि जिनको हम आप नीतिभ्रष्ट

साहूकारका धन है परंतु मैंने दो पहर महात्माके मुखसे हरिचारित्र सुना इससे दूसरा जन्म हुआ यह चरित्र देख राजा और प्रजा सब महात्माके शिष्य हो कृष्णमंत्र ले ताके प्रतापते जन्ममरणसे छूट गोलोकवासी भये सो देख शिष्य गुरुका ऐसा प्रताप है इति ।

श्लोक—अखंडमंडलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

भाषार्थ—हेशिष्य देखो कैसा परमात्मा है जो अखंड अविनाशी चर कहिये जीवधारीमात्रमें व्याप्त और अचर जडपदार्थ पाषाण वृक्षादि इनमें व्याप्त होरहाहै जैसे तिलनमें तेल काष्ठमें अग्नि परंतु विना आत्मज्ञानद्वारा नहीं जाना जाता सो आत्मज्ञान तथा अलभ्य पदार्थकी प्राप्ति यह गुरुकी कृपासे होता ताते हम गुरुके चरणनको बार २ वंदन करतेहैं इति ।

शिवसंहितायाम् ।

श्लोक—भवेद्वीर्यवती विद्या गुरुवक्त्रसमुद्भवा ।
अन्यथा फलहीना स्यान्निर्वीर्याप्यतिदुःखदा ॥

भाषार्थ—हेशिष्य देखो महादेव पार्वतीजीसे कहतेहैं कि गुरुद्वाराही जो विद्या प्राप्त हो सोई फलदायक है ,अन्यथा तो शास्त्र देख साधन करना गुरु न करना ये सब क्लेशकारिणी और कलंकी हैं जैसे विना विवाह क्वारी स्त्रीके पुत्र हुआ ताको जगतमें निरादर होताहै तासे गुरुद्वाराही विद्या सीखनी यह बातका प्रमाणभी सुनो इति ।

गीतायां षोडशेऽध्याये ।

श्लोक—यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥

भाषार्थ—हेशिष्य-देखो श्रीकृष्ण महाराजनेभी अर्जुनसे कहाहै कि गुरुके मुखसे निकसी विद्याकाही ग्रहणकरे इसप्रकारसे जो धर्मशास्त्रकी विधि ताको परित्यागकर अपनी इच्छानुसार जो पुरुष किसी कार्यका अनुष्ठान करताहै

सन्ततिसुख से वे हाथ धो बैठते हैं। उनकी स्त्रियों को कभी सन्तोष नहीं होता है! फिर वे व्यभिचार करने लगती हैं। स्त्रियों के बिगड़ने से सन्तान भी दुःसाध्य होती है व अधर्म की वृद्धि होती है। अधर्म के फैलते ही घर में व देश में दारिद्र्य, अकाल व अशान्ति आदि फैलते हैं। फिर सुख की आशा कहाँ? अन्त में सब कुल नरकगामी होता है। (गीता अ० १ ला श्लोक ४१ से ४४ देखो) इस महा पाप के मूल कारण व भागी दुराचारी पुरुष ही होते हैं।

हाय! यह बड़ा ही अधर्म और दुष्ट कर्म है। जिस अभागे को इसके करने का एक बार भी दुर्भाग्य प्राप्त हुआ तो धीरे धीरे यह "शैतान" हाथ धोकर उसके पीछे पड़ जाता है, यहाँ तक कि प्राण बचना भी मुश्किल हो जाता है। ऐसे पुरुष इस महानिन्द्य कुटेव के पूर्ण गुलाम बन जाते हैं। दुर्बल चित्त के कारण इच्छा करने पर भी वे संयम नहीं कर सकते। हजारों प्रतिज्ञायें करने पर भी एक भी प्रतिज्ञा पूरी नहीं होने पाती। विषयों के सामने आते ही सभी प्रतिज्ञायें ताक़ पर धरी रह जाती हैं। इस प्रकार वीर्य को नष्ट करने से मनुष्य का मनुष्यत्व लोप हो जाता है। और उसका जीवन उसी को भारस्वरूप मालूम होने लगता है। आबोहवा का परिवर्तन थोड़ा भी सहन नहीं होता। हर समय सर्दी गर्मी मालूम होने लगती है, जुकाम, सिर-दर्द और छाती में पीड़ा होने लगता है। ऋतुओं के बदलते ही उसके स्वास्थ्य में भी फ़र्क़ होता है और अन्यान्य रोग उत्पन्न हो जाते हैं। देश में जब कभी बीमारी फैलती है तब सबसे पहले ऐसा ही पुरुष बीमार पड़ता है और अक्सर वही काल का शिकार बनता है।

भाषार्थ—हेशिष्य देखो जैसे कुदारिसे पृथ्वी खोदते खोदते पुरुषको निर्मल जल प्राप्त होताहै तैसेही जो आत्मप्राप्तिविद्या गुरुके हृदयमें है ताको जिज्ञासु गुरुकी सेवाकर प्रसन्नतासे ले लेगा जैसे विना कुदारी पृथ्वीसे जल नहीं निकलता तैसे विना गुरुसेवा आत्माका दर्शन नहीं होता ताते गुरुसेवा मुख्य है ।

स्कंदपुराणे ।

श्लोक—गुरुरादिरनादिश्च गुरुः परमदैवतम् ।
गुरोः परतरं नास्ति तस्मात्सम्पूजयेद्गुरुम् ॥

भाषार्थ—हेशिष्य देखो गुरु आदिहै अनादि है परम देवता है गुरुके शिवाय और कोई जीवका उद्धारक नहीं सो तासे सर्वोपरि गुरु परमपूज्य है अब आगे गुरुलक्षण ।

अथ गुरुलक्षणं—पद्मपुराणे ।

श्लोक—महाभागवतश्रेष्ठो ब्राह्मणो वै गुरुर्नृणाम् ।
सर्वेषामेव लोकानामसौ पूज्यो यथा हरिः ॥

भाषार्थ—हेशिष्य देखो गुरुके लक्षण मैं तुमसे कहताहूं सो सावधान हो सुन जिनमें ये लक्षण हों सो गुरु योग्य है यथा पूज्यमान भगवद्भक्त वैष्णव ब्राह्मण हो संसारमें पूज्य सो ऐसा गुरु हरिसम पूज्य है । पुनः—

श्लोक—शाब्दब्रह्मपरब्रह्मनिष्णातो ध्यानतत्परः ।
शिष्ये पुत्रतुल्यदृष्टिर्दयालुर्निर्मलाशयः ॥

भाषार्थ—गुरु कैसा हो परब्रह्म परमात्माका अष्टयाम ध्यानमें तत्पर हो और शिष्यको पुत्रतुल्य जाने दृष्टिसमता दयालुता धर्ममें प्रीति निरालस्य क्रोधरहित ।

श्लोक—वर्णाश्रममतालंबी संध्योपासनतत्परः ।
सुधीरः संशयोच्छेदी कामक्रोधविवर्जितः ॥
ब्रह्मण्यो वेदतत्त्वज्ञः कुलीनो भक्तितत्परः ।
शिष्योपदेशरसिकः सेवेच्छापरिवर्जितः ॥

पर झाईं पड़ने (काले दाग पड़ना) लगती है। यह अत्यन्त वीर्यनाश का निश्चित लक्षण है।

(५) आँखें व गाल अन्दर धँस जाते हैं और गाल की हड्डियाँ खुल जाती हैं।

(६) बाल पकने व झड़ने लगते हैं। मूछें पीली व सुर्ख यानी लाल बन जाती हैं। बारह वर्ष के उपरान्त बाल का सफेद होना वीर्यनाश का स्पष्ट लक्षण है।

(७) कोई भी रोग न रहते हुए अकाल ही में वृद्ध पुरुष की तरह जर्जर, दुर्बल व ढीले बनना; किसी अच्छे काम में दिल न लगना व नाताक़त बनना तथा थोड़े ही परिश्रम से व दौड़ने से हाँफने लगना और मृत्पिण्ड की तरह उत्साह-हीन बनना; दैनिक काम करना भी अच्छा न लगना; सामान्य से सामान्य काम भी कठिन जान पड़ना।

(८) चित्त में कुचिन्ताओं का बढ़ना। थोड़े ही डर से छाती में बेहद धड़कन आना तथा भयभीत हो जाना। थोड़ा सा भी दुःख पहाड़ सा मालूम होना।

(९) बार बार झूठी ही अस्वाभाविक भूख लगना अथवा भूख का मन्द पड़ जाना, यह भी वीर्यनाश का प्रमुख चिन्ह है। अपच और मलबद्धता (कब्जियत) इसका निश्चित परिणाम है। चरपरे मसालेदार पदार्थ खाने में अधिक रुचि रखना।

(१०) नींद का न आना; यदि आई तो ऐसी आना जैसी कुम्भकर्ण की निद्रा जैसी। उठते समय महा आलस्य व निरुत्साह मालूम करना और आँखों का भारी पड़ना।

शारदातन्त्रे।

श्लोक-परोपकारनिरतो जपपूजादितत्परः।
अमोघवचनः शांतो वेदवेदार्थपारगः॥

भाषार्थ-कैसा गुरु हो कि परोपकारी जप पूजा होम इनमें तत्पर हो और वचन सदा विचार कर कहे शांतप्रकृति चंचलतारहित वेदके अर्थ पर लक्ष्य और वेदांतके विचारमें कालको व्यतीत करे ऐसा गुरु पूज्य है।

अगस्त्यसंहितायाम्।

श्लोक-तत्त्वज्ञो मंत्रयंत्राणां मर्मवेत्ता रहस्यवित्।
पुरश्चरणकृद्धोममंत्रसिद्धप्रयोगवित्॥

भाषार्थ-हेशिष्य पुनः देखो ये लक्षणहों तत्त्वको जाननेवाला मन्त्रतंत्रका मर्मवेत्ता अन्तसते मोह अज्ञानता विनाश करे प्रयोगद्वाराभी श्रीकृष्णमन्त्र प्रसिद्ध हो अनुष्ठानी हो पाखंडी न हो यह गुरुका स्वरूप है।

श्लोक-तपस्वी सत्यवादी च गृहस्थो गुरुरुच्यते।
नैष्ठिको ब्रह्मचारी वा यथा श्रीनारदादयः॥

भाषार्थ-देखो शिष्य गुरु तपस्वी सत्यका बोलनेवाला गृहस्थ हो ब्रह्मचारी हो तो श्रीनारदमुनिसम नैष्ठिक शास्त्र वाक्यका पालन करनेवाला हो धर्मज्ञ दयाकरके युक्त हो और भी बहुत लक्षण परंतु सबका सार एक श्लोकमें।

श्लोक-उपदेशेषु कुशलः सर्वाङ्गावयवान्वितः।
तत्त्वबोधाय शिष्येषु सदैवार्द्रितमानसः॥

भाषार्थ-हेशिष्य अब सबका आशय यह एक श्लोकमें कहा याने उपदेशमें कुशल हो जिसप्रकार जिज्ञासु समझै वही प्रकार उत्तर उसके प्रश्नका दे अनेक दृष्टांतद्वारा लक्ष्य कराय दे और तत्त्वका बोध भले विधि शिष्यको करावे ऐसे लक्षण हों जामें सो विचारवान् ताको गुरुकर अपने उद्धारका यत्न पूंछ ताको विचारे। अब पाखंडी धूर्त हो ताको गुरु न करे सो प्रमाण।

(२०) किसी समय ऊपर उठते समय एकाएक दृष्टि के सामने अन्धेरा छा जाना तथा मुर्छा आने से नीचे गिर पड़ना।

(२१) मस्तिष्क का बिल्कुल हलका व खाली पड़ना। स्मरण शक्ति का ह्रास होना। देखे हुए स्वप्न का याद न आना। रक्खी हुई वस्तु का स्मरण न होना और कण्ठ की हुई कविता या पाठ भी भूल जाना और मानसिक दुर्वलता का बढ़ जाना।

(२२) आबो हवा का परिवर्तन न सहा जाना।

(२३) चित्त का अत्यन्त चंचल, दुर्वल, कामी व पापी बनना और कोई भी प्रतिज्ञा पूरी न कर सकना तथा सब काम अधूरे ही कर के छोड़ देना। एक भी अच्छा काम पूर्ण न करना, पर कुकर्म प्रयत्न पूर्वक पूरा करना। गिरगिट की तरह सदा विचार व निश्चय बदलते रहना और सदा मन मलीन व नापाक बने रहना।

(२४) दिमाग़ में गर्मी छा जाना। नेत्रों में जलन उत्पन्न होना व नेत्रों से पानी बहने लगना।

(२५) क्षण ही में रुष्ट व क्षण ही में तुष्ट होना।

(२६) माथे में, कमर में, मेरुदण्ड में और छाती में बार बार दर्द उत्पन्न होना।

(२७) दाँत के मसूड़े फूलना। मुख से महान् दुर्गन्धि का आना तथा शरीर से भी ❀ बदबू निकलना। वीर्यवान् के शरीर से सुगन्धि निकलती है। (अतः दाँत को बिलकुल साफ़ रखना चाहिये।)

---

*दुर्गन्धो भोगिनो देहे जायते बिन्दुसंक्षयात्।
श्री शिवदास वामन

श्लोक—लोभी च लंपटो द्यूती परद्रव्यापहारकः।
मूर्खो ज्ञानविहीनस्तु गुरूनेतान्विवर्जयेत् ॥

भाषार्थ—लोभी हो लंपट जुवारी चोर मूरख ज्ञानकरके रहित परसंतापी झूठका बतानेवाला ये लक्षण जामें सोभी त्याज्य है ऐसे पुरुषको गुरु न करै।

श्लोक—पुंश्चलीपतयः क्रूरा नानामतविधारकाः ॥
शठास्ते दूरतो हेया गुरुत्वेधर्मभीरुणा ।

भाषार्थ—पुंश्चली कहे वेश्याका पति क्रूर याने जाका दुष्टस्वभाव खल याने नीचवृत्ति याने मद्यमांस आहारी मूर्ख इनते सदा दूर रहै गुरु करना दूर रहो इनके निकट न बैठे या प्रकारके आचरणवाला गुरु न हो।

शिष्यलक्षण।

श्लोक—अथातो लक्षणं वक्ष्ये शिष्यस्यापि समासतः।
बाह्याभ्यंतरभेदेन गुरुर्धर्मार्थसाधकः ॥

भाषार्थ—हेजिज्ञासु! अब शिष्यके लक्षण सुनो ये लक्षण शिष्यमें हों तो ताको उपदेश दे नहीं तो गुरु पातकी होगा अंतर बाहिर साफ हो कपट करके रहित हो धर्ममें रुचि गुरुमें प्रीति गुरुधर्मका पालन करनेवाला ऐसा शिष्य चाहिये।

श्लोक—मिथ्याभूतं जगत्सर्वं सत्यस्तु परमेश्वरः।
इति निश्चयवान्धीरो मुमुक्षुः शिष्य उच्यते ॥

भाषार्थ—हे शिष्य मुमुक्षु ऐसाहो जगत् जो संसार ताको और ताके व्यवहारभी सब स्वप्नावस्थाके सुखवत् नाश मानताहै परमेश्वर एक केवल सत्य है ऐसा जो बुद्धिवान्को निश्चय है सोई शिष्य योग्य है।

श्लोक—दुर्लभं मानुषं देहं ज्ञात्वा हीनं क्षणेक्षणे।
लोकद्वैतविरागी यः स शिष्यो गुरुभक्तिमान् ॥

भाषार्थ—हेशिष्य देखो शिष्य ऐसा चाहिये जो यह विचार करताहो कि, यह मनुष्यतनु अतिदुर्लभहै परंतु सो भी क्षणप्रति क्षीण होता जाता है दूसरे

भी एक-दो लक्षण पुत्र-पुत्री और शिष्य-मित्रोंमें दिखाई दे तो फौरन उन के सामने पाप के परिणाम का भीषण चित्र तथा ब्रह्मचर्य की श्रेष्ठमहिमा स्पष्ट शब्दों में रखनी चाहिए। इसमें लज्जा संकोच करना तथा अपमान समझना मानो अपनी सन्तान का पूर्ण नाश ही करना है। "शरीरं व्याधि मन्दिरम्" तब ही बनता है जब कि मनुष्य ब्रह्मचर्य के प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन करता है। अतः उन्हें उन नियमों का अवश्य ज्ञान करा देना चाहिये। माता, पिता व गुरु ब्रह्मचर्य का पूर्ण स्पष्ट वर्णन करने में लजाते हैं! परन्तु यह उनकी भारी भूल एवं मूर्खता है। अपने पर बीती हुई दुर्घटनाओं को, जिनके दुष्परिणाम माता-पिता तथा गुरुजनों को आज भी उनकी मर्जी के विरुद्ध भोगने पड़ रहे हैं, लड़कों से साफ़ साफ़ कहें और उनसे बचे रहने के लिये अपने अनुभूत इलाज को स्पष्ट बतलायें अथवा यह जीवन पथप्रदीप ग्रन्थ अपने प्रिय बालकों, शिष्यों अथवा मित्रों के हाथ में रख दें, जिससे उनका कर्तव्यमार्ग उन्हें साफ़ दिखाई दे।

कई लोग यह समझते हैं कि यदि बालकों के सामने ब्रह्मचर्य की रक्षा के हेतु हस्तमैथुन शिशुमैथुनादि महानिंद्य बुराइयों का वर्णन करे, तो वे यदि न भी जानते होंगे तो इन दुर्गुणों को जान लेंगे परन्तु यह धारणा बिलकुल वृथा व नाशकारी है। यदि आप न कहेंगे तो बालक कुसंगों में पड़ कर दूसरों से अवश्य ही उपर्युक्त दुर्गुण सीख लेंगे। परन्तु बुराइयों का तीव्र निषेध व ब्रह्मचर्य की उज्वल महिमा आप वर्णन करेंगे तो आपके बालक अवश्य ही सदाचारी व ब्रह्मचारी बनेंगे ऐसा पूर्ण विश्वास रक्खो। गन्दगी या गडढ़े को ढाकने के बनिस्बत उससे बचे रहने का ज्ञान करा

भाषार्थ—धर्मवान् हो सत्शास्त्र कहे जो भगवत्तत्त्वका जामें निरूपण दृढ-ताहै आस्तिकबुद्धि एक परमेश्वरहीके आश्रय गुरुकी शुश्रूषामें चित्त जिनका।

श्लोक—हितैषी प्राणिनां नित्यं परलोकार्थकर्मकृत्।
वाङ्मनःकायवसुभिर्गुरोर्हितकरः सदा॥

भाषार्थ—मनुष्यनका हितैषी याने सबका हितउपदेश देना नित्यपरलो-कके अर्थ कर्मकृत् वाङ्मन देह सब प्रकार करके गुरुका हिती ऐस शिष्य हो।

मंत्रमुक्तावल्याम्।

श्लोक—कामक्रोधपरित्यागी भक्तश्च गुरुपादयोः।
इत्यादिलक्षणैर्युक्तः शिष्यो भवति नान्यथा॥

भाषार्थ—याप्रकार जो शिष्य कामक्रोधकरके रहित भक्त गुरुपादारविंदमें प्रीति ऐसे जाके लक्षण सोई शिष्य है वहीको हितउपदेश देना चाहिये।

त्याज्यशिष्यलक्षणमगस्त्यसंहितायाम्।

श्लोक—निन्दका नास्तिकाः क्रूरास्तथा स्वेच्छाविहारिणः।
अश्रद्दधाना विश्वासरहिताः कुलपांसनाः॥

भाषार्थ—निंदक नास्तिक क्रूर और अपनी इच्छानुसार विचरना किसीमें विश्वास न रहना असत्कर्ममें रुचि और जुवामें प्रीति ये दोष जिसमें हों ऐसा शिष्य त्याज्य है।

श्लोक—गुरुद्रव्येच्छया सेवी दंभी धर्मध्वजः खलः।
वेदशास्त्रगुरूक्तीनां स्वतर्केण विखंडकः॥ १॥

भाषार्थ—गुरुके द्रव्यभोगनेकी इच्छा दंभ दुष्टता वेदशास्त्रमें तर्क करना अपनेको बडामानना ऐसाभी पुरुष त्याज्यहै इससे गुरुकी अपकीर्ति है।

श्लोक—अन्यायोपार्जितधनाः परदाररताश्च ये।
गृहिणीदासरूपाश्च हेया मूढाः श्वपाकवत्॥

भाषार्थ—अन्याय याने चोरी बदमाशीकरके धन पैदाकरे पराई स्त्रीमें प्रीति निजस्त्रीके दास मूढ दासकर्म करनेवाला अस्वतन्त्र ये त्याज्यहैं।

तो उसकी धृष्टता एवं मूर्खता है। एक मात्र शुद्ध मन ही मनुष्य को ब्रह्मचारी एवं वीर्य धारण करने के लिये समर्थ बना सकता है। दवा-दर्पण कदापि नहीं इनसे तो वीर्य का औरभी नाश होता है।

आजकल जिसे देखो वही वैद्य बन बैठा है। 'बूढ़ा भी जवान हो गया' 'मुर्दा भी जिन्दा हो गया' 'अजब ताक़त की दवा' ऐसे ऐसे झूठे विज्ञापन, का मोहजाल फैलाकर वेश्याओं की तरह बाल-बालिकाओं को तन से, मन से, धन से, व प्राण से ये वैद्य बरबाद कर रहे हैं। प्यारे भाइयो, ऐसे स्वार्थान्ध वैद्यों से बचे रहो। सुयोग्य वैद्यों तथा माता पिता व गुरुजनों के सामने अपने रोग का स्पष्ट वर्णन करके उनसे उचित सलाह लो। बहुत सी औषधियाँ अन्य रोगों के लिये भी दिव्य गुणकारी होती हैं; परन्तु एक मात्र विशुद्ध मन सम्पूर्ण संसार में वीर्य-रक्षा के लिये दिव्यौषधि है। अन्य सब उपाय वृथा व आनुषंगिक हैं।

जब रोगियों के बारे में वैद्यों का कुछ भी वश नहीं चलता तो अन्त में जल-वायु परिवर्तन के लिए ही उन्हें सलाह दी जाती है; परन्तु उसके पहले वे रोगियों को ख़ूब लूट लेते हैं। सचमुच शुद्ध वायु, शुद्ध जल, शुद्ध व पवित्र भूमि, विपुल प्रकाश व विपुल अवकाश बस ये ही इस लोक के पञ्चामृत हैं। इसी का सेवन करने से हमारे पूर्वज ऋषि-मुनि इतने दीर्घायु, आरोग्य-संपन्न ज्ञानी पवित्र-मानस व सामर्थ्य-सम्पन्न होते थे। यदि हम भी इसी "पंचामृत" का यथेष्ट सेवन "रोज नियम पूर्वक" किया करेंगे तो हम भी उनके समान निःसंदेह श्रेष्ठ बन जाँयगे।

एक महात्मा जितेन्द्रिय परमअनन्यभक्त नित्य अनुभवसमाधिमें तत्पर श्रीराधाविहारीकी छविछटामें मग्न यह दशा देखि बुढियाने दंडवत् कर पोटली महात्माके आगे धर अतिकरुणायुक्त वचनद्वारा महात्मासे प्रार्थना शरणागतके अर्थ करतीभई कि हेज्ञानसागर कृपानिधान हमें संसारके दुःख तपनरूपीसे दुःखी इस अतिजिज्ञासुको हित उपदेशरूपी छायामें निवास दीजै यह सुन प्रथम तो महात्मा चुप रहे फिर सोचकर विचारा कि शरणागतसे न बोलना येभी अहंकारकी प्रबलशक्ति अंतःकरणमें प्रवेश करेगा ऐसा जानि बुढिया प्रति बोले कि तू शिष्य होगी या ये पोटली द्रव्ययुक्त लाई ताको उपदेश दिवावेगी देख बुढिया जा मायासे चचतीहै सो ताको मूल पोटरीके भीतरका पदार्थ है इसके पीछे शरीरसे प्राणभी चोर भिन्न करतेहैं तासे तू इसे प्रथम गरीबनको बाँट फिर आ यह सुन बुढियाने वैसाही किया और आय महात्माकी दंडवत्की यह देख महात्माने विचारा कि विना परीक्षा उपदेश न देना चाहिये यथा विना पात्रशुद्धि पदार्थ खराब जाताहै तैसेही परीक्षा कर मंत्र दें यह सोच महात्माने विचारा कि ऐसा यत्न करैं कि बुढियाके खेदभी न हो यह विचार बुढियासे कहा कि अभी सूर्य्य दक्षिणायन है उत्तरायणमें मंत्र श्रेष्ठ है तबतक ये घटले ये वृक्षोंको सींच जामें बडे हों यह सुन बुढिया घट ले वृक्षोंको सींचनेलगी बहुत दिन बाद विचारा कि इतना श्रम करतीहूँ परंतु वृक्ष हरा नहीं होता इसका कारण क्या फिर देखा कि वृक्षके जडकी मृत्तिका कठोर और कडेसे आच्छादितहै यह विचार एक लोहेकी कुदारी बनाय तासों गोडकर काट साफ किया इतने बाद जल डारना शुरू किया और थोडे कालमें वे वृक्ष फूल फलकर युक्त हुए यह देख बुढियाने महात्मासे निवेदन किया ताको देख बहुत दिनके श्रमका कारण पूंछा तब बुढियाने सब वृत्तांत यथावत् जैसे प्रथम परिश्रम कर फिर लोहेकी कुदारी द्वारा गोडा था सो सब कहदिया यह सुन महात्मा बोले देख बुढिया यही मोक्षका कारण ज्ञान है

उनका खाद्य उन्हें मिलता है। आज कल के ब्राह्मण किसी मरे हुए बड़े सेठ के यहाँ जैसे फौरन बिना बुलाये दौड़े आते हैं; वैसे ही रोग, शोक दुःखादि भी नष्ट-वीर्य-पुरुष के यहाँ फौरन चले आते हैं। परन्तु आरोग्य, सुख, शान्ति, समृद्धि, आनन्द इनका हाल ऐसा नहीं है, वे बड़े ही मानी हैं। दुराचारी व्यभिचारी पुरुषों से वे कोसों दूर रहते हैं; केवल सदाचारी ब्रह्मचारी पुरुषों के ही यहाँ वे वास करते हैं। ब्रह्मचारी पुरुषों को कोई भी रोग नहीं सता सकता प्लेग कालरा भी उनका कुछ नहीं कर सकते। सब कोई दुर्बलों को ही मारते हैं। बलवान को कोई सता नहीं सकता। "दैवो दुर्बल घातकः"। बस, यही प्रकृति का क़ायदा है। अतः हमको अब सब तरह से बलवान ही बनना होगा, क्योंकि बलवान ही राजा है, चाहे वह भले ही निर्धन हो। रोगी पुरुष राजा होने पर भी भिखारी और पूर्ण अभागा समझना चाहिये। "तन्दुरुस्ती हज़ार निआमत है।" भोगी पुरुष सदा रोगी ही बना रहता है, वह कभी भी योगी यानी सुखी नहीं हो सकता, वह सदा वियोगी अर्थात् दुःखी ही बना रहता है। व्यभिचारी पुरुष कदापि निरोग और बलवान नहीं हो सकता। एक मात्र वीर्यवान ही बलवान, आरोग्यवान, भक्त और भाग्यवान हो सकता है। वीर्यनष्ट पुरुष सदा रोगी दुःखी, पापी और अभागा ही बना रहता है। उसका उद्धार, फिर से वीर्यधारण किये बिना सात जन्म में भी होना असम्भव है।

संसार में तीन बल हैं—एक शरीरबल, दूसरा ज्ञानबल और तीसरा मनोबल। इन तीनों बलों में मनोबल अर्थात् आत्मबल सब से श्रेष्ठ बल है। बग़ैर आत्मबल के और सब बल वृथा हैं।

सत्संगप्रकरणम् ।

हे शिष्य अब एकाग्रमन कर तू सत्संगका माहात्म्य सुन कैसा है सत्संग की दुःखरूपी घामसे बचाता और मनमाने फलका देनेवाला कल्पवृक्ष सत्संग है जो कोऊ देखै सिहाय वो माँगे तो फल देतहै ये विन कहे अपार जैसे फलित वृक्षके नीचे बैठो तो तामेंसे स्वतएव याने आपही फल गिरा करतेहैं तैसेही सत्संगमें अनेक प्रकारकी वार्ता ज्ञान वा भक्तिका निर्धार सुननेमें आताहै तासे जिज्ञासुको सज्जन महात्माओंका सत्संग अवश्यकरना चाहिये ये वार्ता श्रीकृ-ष्णने उद्धवप्रति श्रीमद्भागवतएकादशस्कंधमें कहीहै ।

भागवते एकादशे ।

श्लोक–यथोपाश्रयमाणस्य भगवंतं विभावसुम् ।
शीतं भयं तमश्चेति साधु सेवेत तत्तथा ॥

भाषार्थ–श्रीकृष्णमहाराज उद्धवसे कहेहैं कि हे उद्धव जैसे अग्निके सेवन करनेसे शीतादिकसे कंपित शरीर सुख पाताहै और प्रचंड अग्निसे अंधकार दूर होताहै तैसे संसारके दुःख यही शीत ताको सत्संग उष्णतासे दूर करताहै तहां पुनः कहे ।

श्लोक–निमज्ज्योन्मज्जतां घोरे भवाब्धौ परमायनम् ।
संतो ब्रह्मविदः शांता नौर्दृढेवाप्सु मज्जताम् ॥

भाषार्थ–देखो ये संसाररूप घोरसमुद्र दुर्गंधयुत तामें श्वान शूकर कृमी, आदिक योनि ग्रहणकर बूढते उछलते लवमात्रभी सुख नहीं पाते तामें महा-त्मावोंका सत्संग सोई नौकामें बैठ पार होजातेहैं पुनः ।

श्लोक–अन्नं हि प्राणिनां प्राण आर्तानां शरणं त्वहम् ।
धर्मो वित्तं नृणां प्रेत्य संतो वा बिभ्यतोऽरणम् ॥

भाषार्थ–जैसे संसारी जीवोंके प्राणकी रक्षा करनेवाला अन्न यथा शरीरकी रक्षा अन्नसे तैसेही जो पुरुष संसारसे अलग हो मेरा चिंतवन करताहै उसका मैंहीं निर्धारक हूँ तैसे जिज्ञासुका उपाय सत्संगहै अवश्य सेवन करना तो संसारकी बाधा नहीं व्यापती ।

चारों पुरुषार्थों का मुख्य मूल है; और इसी में हमारी मुक्ति किंवा स्वतन्त्रता भरी हुई।

" Sound Mind in a Sound Body" यानी "शरीर सुखी और पुष्ट है तो आत्मा भी सुखी और पुष्ट है और शरीर दुखी और दुर्बल है तो आत्मा भी दुखी और दुर्बल है," यही प्रकृति-शास्त्र का नियम है, शरीर निरोग होने पर हमारी आत्मा भी अत्यन्त निर्मल, बली और सामार्थ्य-संपन्न बन जाती है। रोगी शरीर में आत्मा की उन्नति का होना कठिन है। अतएव प्रकृति के नियमानुसार चलकर सदाचरण द्वारा ब्रह्मचारी बन, अपना शरीर सुधार लेना हमारा सब से प्रथम और श्रेष्ठ कर्तव्य है।

हमारा केवल यही एक मात्र शरीर नहीं है। स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण, ऐसे हमारे चार शरीर हैं और इनके अतिरिक्त हमारे इस शरीररूपी साम्राज्य में असंख्य शरीरधारी कीटाणुओं की सेना सर्वत्र भरी हुई है, जो कि हमारी रात-दिन रक्षा कर रही है। इन सब का अधिष्ठाता आत्मा उनका राजा है। विजय उसी राजा की होती है जिसकी सेना बलवान और प्रचण्ड है। ठीक यही हालत हमारे शरीररूपी सेना की और आत्मारूपी राजा की समझिये।

७—ब्रह्मचर्य के विषय में प्रमाद

आज हिन्दू जाति इतनी पतित क्यों हुई है! वह इतनी रोगी, दुर्बल, निरुत्साही, मूर्ख और अल्पायु क्यों हुई है। जिस भारतवर्ष में भीष्म पितामह और हनुमान जैसे शूरवीर, गंभीर, धीर और

उतारली और शिष्य भगवद्भक्तिमें लीन हुआ. सो ऐसे भगवतके अपराध से बचानेवाला ज्ञानही है सो सत्संगते होता है. इति ।

भागवते प्रथमे० ।

श्लोक—व्रतानि यज्ञाश्छंदांसि तीर्थानि नियमा यमाः ।
यथावरुन्धे सत्संगात्सर्वसंगाय देहिनाम् ॥

भावार्थ--हे शिष्य ! भगवानका वाक्य है कि, व्रत और यज्ञ तथा तीर्थ वेदका उच्चारण तीर्थ यम नियमका साधन सो ये सब करे परंतु जबतक इनके करेसे तत्त्वप्रातिका लक्ष्यकरानेवाला सत्संग है सो प्रथम सत्संगतीर्थमें मज्जनकर अंतर्बाह्यके विषयवासनाके मूल तिनको दूर करे ये शास्त्रसंमत है ।

योगवासिष्ठे ।

श्लोक--यस्मिन्देशे न तत्त्वज्ञो नास्ति सज्जनपादपः ॥
सफलः शीतलच्छायो न तत्र दिवसं वसेत् ॥

भावार्थ--हे शिष्य!देखो वशिष्ठजीने श्रीरघुनाथजीसे कहा कि हे रामजी! जिस देशमें जिस ग्राममें तत्त्ववेत्ता (ज्ञानी) नहीं न कोई सज्जन याने सत्संगी और न दयावान् पुरुष तहां कैसाभी सुख हो तत्त्वजिज्ञासु एक दिन भी तो वास न करे ।

गीतायाम् ।

श्लोक—काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥

भावार्थ—हे शिष्य!देखो श्रीकृष्णमहाराजने अर्जुनसे कहा कि, हे अर्जुन! कैसाही ज्ञानी हो परंतु विना सत्संगके नष्ट होजाता है कामक्रोधादि तथा रजोगुण इनके अविद्याके भ्रमरमें पड ज्ञान नष्ट होजाताहै जैसे विना मल्लाहके नावको वायुके उपद्रव तथा जलके भ्रमर ये डुबाय देते जो मल्लाह हुआ तो लंगर डार तूफानसे नाव बचाताहै तैसे सत्संग में जो विचार प्राप्त हुआ तासे संसारबाधा दूरहोतीहैं ।

क्या हमारे शत्रु हम ही हैं और हमारे मित्र भी हम ही हैं ? क्या हमारे ही कृत कर्मों से हमें ऐसी नीच दशा प्राप्त हुई है ? हाँ, भगवद्वाणी तथा संतवाणी हमें यही बतला रही है ! "तुम ही अपने मित्र हो तथा तुम ही अपने शत्रु भी हो, अपने पतन के कारण केवल तुम्हीं हो।"

सत्य है ! नीति न्याय मर्यादा का उलंघन करने ही से अर्थात् अधर्म और अन्याय बढ़ने ही से आज हमारी ऐसी पतित हालत हुई है; जैसे हम अपने को कुकर्मों द्वारा पतित बना सकते हैं वैसे ही सुकर्मों द्वारा अपना उद्धार भी कर सकते हैं। उन्नति के लिये अब हमें धर्मका आचरण अवश्य ही अति शीघ्र शुरू करना होगा ! श्री गीतादेवी के सच्चे अध्ययन की आज हमें नितान्त आवश्यकता है। आज हमें सच्चे कर्मवीरों की बड़ी ही जरूरत है। वीर्यभ्रष्ट कच्चे कर्मवीर बड़े ही घातक होते हैं; बीच ही में किसी डर के कारण अपने कर्तव्य को छोड़ भागने वाले पुरुष बड़े कायर और नामर्द होते हैं। "काम मर्दों का नहीं जो कि अधूरा करना, जो बात ज़बाँ से निकाले उसे पूरा करना।" बस ऐसे ही मर्द पुरुष की आज भारत को जरूरत है। नामर्द और व्यभिचारी पुरुष का अब यहाँ कुछ भी काम नहीं है। क्योंकि ऐसे लोग देश के घोर शत्रु होते हैं। वीर्यनाश के कारण आज तक बहुत कुछ नाश हो चुका है। अब हमें अपने पूर्वजों का अनुकरण अति शीघ्र करना होगा और दुराचार को छोड़ पूर्ण सदाचारी और ब्रह्मचारी बनना होगा। 'हमारे बाबा ऐसे थे और वैसे थे, ऐसा कोरा अभिमान और कोरी बातें हमें अब साफ़ छोड़ देनी होगी। उनकी जैसी प्रत्यक्ष करनी ही करके हमें अब दिखलाना

भावार्थ–हेशिष्य देखो उद्धवजीने श्रीकृष्ण महाराजसे कहा कि आप कृपाकर हमें श्रीवृन्दावनकी गुल्म लता करो काहेते कि बडे वृक्षनपै रज नहीं पहुंचेगी और छोटेनपै जब आपकी कृपापात्र श्रीव्रजगोपी महाराणी निकसैंगी तब उनके पदकी रज उड हमारे ऊपर पड़ैगी तासों हम धन्य मानैंगे इसका यह सिद्धांत जबतक महत्त्वका अहंकार है तबतक महात्माओंका दर्शन नहीं प्राप्त होता पुनः श्रीकृष्णसे काहेको कहा जब श्रीउद्धव गोपिनको ज्ञानका उपदेश देतेथे तब रज (मिट्टी) काहे न ली तात्पर्य्य कि विना भगवतकृपा महात्माका दर्शन नहीं देखो शिष्य उद्धव श्रीकृष्ण महाराजके परममित्र वेभी अपनी गति महात्माओंकी पदरजसे मानी तासे जिज्ञासु सत्संगमें रहै।

योगवासिष्ठे।

श्लोक–संगः सर्वात्मना त्याज्यो यदि त्युक्तुं न शक्यते।
सद्भिरेव प्रयोक्तव्यः सत्संगो भवभेषजम्॥

भावार्थ–हेशिष्य विचारवान पुरुषको चाहिये कि कुसंग याने विषयी पुरुषोंका संग त्यागना और महात्माओंका सत्संग करना जासे संसारी भयसे बचे तहां एक बनिया और ठगका इतिहासहै एक बनिया मार्गमें जारहाथा कि उतनेमें एक ठगनेभी बनियाका भेष बनाय उसीके संग हो चला कुछ दूर चल उसने चाहा इसे अन्य मार्गसे चोरोंके पास लिवाय जाऊं यह विचारता था कि इतनेमें कोई क्षत्री उसी मार्ग हो कढा बनियेने पूंछा कि अमुक ग्रामको कौन मार्ग है यह सुन छत्री बोला हमारे पीछे आवो यह चोरनका मित्र है सो तुम्हें उनके पास लेवाये जाताथा इति ऐसेही मोह इनमें काम क्रोध येई चोर तिनते आत्मा धन बचावो तासे सत्संग अवश्य करना चाहिये यह बात अन्य ग्रन्थमें।

पंचदशीमें।

श्लोक–क्षणसत्संगमार्गेण यः कुर्य्यादात्मचिन्तनम्।
तन्महापातकं हंति तमः सूर्योदयो यथा॥

प्रथम ब्रह्मचर्य्याश्रम है। मानों यह आश्रम सम्पूर्ण आश्रमों की नींव है और वास्तव में है भी ऐसा ही। ब्रह्मचर्याश्रम की मर्यादा उन्होंने पुरुष की २५ वर्ष की और स्त्री की १६ वर्ष की "पूर्ण दृष्टि" से निश्चित की है। इसमें तिल भर फर्क नहीं हो सकता। यदि कोई व्यक्ति इस नियम को तोड़े तो प्रकृति भी उस व्यक्ति को तोड़ डालती है। प्रकृति के नियम परम कठोर हैं; जो उन नियमों के अनुसार चलता है उसे वे अमृत के समान फल देने वाले होते हैं और जो उनका अतिक्रमण करता है उसे वे विषतुल्य संहारक बन जाते हैं। सदुपयोग करने से अग्नि जैसे परम उपकारी हो सकती है और दुरुपयोग करने से वही अग्नि जैसे महान विनाशक बन जाती है, ठीक यही न्याय प्रकृति के सम्पूर्ण नियमों का भी समझिये।

ब्रह्मचर्य दो प्रकार के हैं। एक "नैष्ठिक" और दूसरा "उपकुर्वाण" आजन्म ब्रह्मचारी को "नैष्ठिक" कहते हैं और गुरुगृह में यथायोग्य ब्रह्मचर्य पालन कर, विद्या प्राप्ति के अनन्तर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने वाले ब्रह्मचारी को 'उपकुर्वाण' कहते हैं।

यदि कोई आजन्म-मरण ब्रह्मचर्यव्रत धारण करे तो फिर पूछना ही क्या? वह इस लोक में सचमुच देवता ही के तुल्य पूज्यनीय बन जाता है; ऐसे पुरुष बहुत कम हैं। उदाहरणार्थः— श्री समर्थ रामदास स्वामी, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, वगैरह इसी उच्चश्रेणी के आदर्श ब्रह्मचारी महात्मा हुये हैं जिनको आज संसार से पूजे जाते हुये हम आप प्रत्यक्ष देख रहे हैं।

और संसारमें पुनः न आनेके उपायार्थ प्रार्थना की यह सुन सनकादिकोंने राधानाम परममन्त्र श्रवणमें राजाको दिया ता मंत्रके प्रतापसे ताही समय दिव्यरूप धारणकर सबके देखते गोलोकको गया इति। सोहे शिष्य देखो सत्संगका ऐसा प्रताप है तासे सत्संग करना चाहिये।

वायुपुराणे।

श्लोक–सदा संतोऽभिगंतव्या यद्यप्युपदिशंति न।
य हि स्वैरकथास्तेषामुपदेशा भवंति ताः॥

भाषार्थ–हेशिष्य संतोंके समीप गये उनकी टहलकरनेसे उनके सत्संगसे अवश्य लाभ होगा काहेते कि महात्मोंका हृदय कोमल होताहै दयारूपी चंद्रमा तासे उपदेशरूपी सुधावृष्टि स्वत एव हुआकरती तू नहींभी माँगेगा तौभी उनकी कृपादृष्टिसे तेरा अंतस शुद्धहोगा जैसे रतौंधीवाला नेमकर चंद्रमाको एक घंटे रोज देखे तो ताकी शीतलताते नेत्रोंकी गर्मी शांत होजाती तैसें महात्मोंके सत्संगसे दिव्यदृष्टि खुलजाती हैं।

स्कंदपुराणे।

श्लोक–यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिंचना सर्वै गुणास्तत्र समासतेसुराः।
हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा मनोरथो नश्यति धावतो बहिः॥

भाषार्थ–हेशिष्य ये मन वृथा धावता जिज्ञासुको श्रीकृष्णभक्तिकी इच्छा हो तो जो जप तपका फल है अंतसकी शुद्धि सो मेरे अनन्यभक्तनको सत् संगही कल्याणका कारण है सो हेशिष्य मनुष्यकी तो बात कहा सत्संगके प्रभावसे राक्षसनको गति भई औरभी वानर स्त्री शूद्रनको तथा तिर्यग् योनि तरगये। प्रमाण–

श्लोक–सत्संगेन च दैतेया यातुधानाः खगा मृगाः।
गंधर्वा अप्सरा नागाः सिद्धाश्चारणगुह्यकाः॥

भाषार्थ–देखो सत्संगके प्रभावते दैत्य पक्षी मृग गंधर्व अप्सरा सर्प सिद्ध वैताल यक्ष इत्यादि।

से वेचारे दिन व दिन सूखे जा रहे हैं और निःसन्तान वन रहे हैं। वाल पके हुये, अन्धे वने हुये, चश्मे लगे हुये, कमर टूटी हुई, वाहर भीतर रोगों से घुले हुये, आँख गाल अन्दर धँसे हुये, दुःखी दुर्वल और निरुत्साही वने हुये, निःसत्व निस्तेज वन कर अत्यन्त डरपोक वने हुये, सव तरह से आत्म-पतित, पापी, और गुलाम वने हुये, असंख्य दुखों में सने हुये और जिन्दी ठठरी वने हुये, तिस पर भी श्वान-शूकर की तरह कामाग्नि में जलते हुये, ऐसे २०—२५ वर्ष के निर्वीर्य वूढ़े विद्यार्थी और गृहस्थाश्रमी ही आज सर्वत्र दिखलाई दे रहे हैं ! हा ! यह दृश्य वड़ा ही भयानक मालूम हो रहा है। इस हृदयद्रावक दृश्य से भारत-प्रेमियों का हृदय आज भीतर ही भीतर जल रहा है। जिनके ऊपर भारत का सच्चा उद्धार निर्भर है, जो कि भारत के मुख्य आशास्थल और आधारस्तम्भ हैं ऐसे नवजवानों को ऐसी पतित और शोकपूर्ण दशा में देख कर किस भारतपुत्र का हृदय दुख से हिल नहीं जाता ! हमें तो रुलाई आने लगती है।

प्रभो ! यह हमारा वड़ा ही भारी पतन हुआ है। जो भारत एक समय परमोच्च उन्नति का केन्द्र था, जिस भारतवर्ष में हजारों वलशाली और वीर्यशाली नरसिंह वास करते थे, जिसकी ओर कोई भी राष्ट्र आँख उठाकर नहीं देख सकता था, जो सम्पूर्ण विद्याओं में सव का गुरु था, जिसका प्रभाव सम्पूर्ण दुनिया पर पड़ा हुआ था, जिसके अंगुलिनिर्देश से सम्पूर्ण दिङ्मण्डल काँप उठता था, वही भारत आज गुलामों का क़ैदखाना सा वन रहा है और सव तरह से पीसा, निचोड़ा और जलाया जा रहा है। हाय ! इससे वढ़कर पतन और कौनसा हो सकता है ? नहीं, हमको अव

श्लोक-साधवो हृदये मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम् ।
मदन्यं ते न जानंति नाहं तेभ्यो मनागपि ॥

भाषार्थ--हेशिष्य भगवतने उत्तरगीतामें कहा कि हेअर्जुन तू साधुनका सत्संग कर तब मेरे निज स्वरूपको जानैगो काहेते कि साधुनमें मोमें अन्तर नहीं याने हम वो एक हैं प्रकृत कहे देह भिन्न है और साधुनके हृदयमें मेरा वास और मेरे अन्तसमें साधुनका वास वे साधुनको मेरे विना और कुछ आधार नहीं ताते तू सत्संगकर या प्रकारसों देख अर्जुन परममित्र जिनका रथ भगवतने हांका परंतु संसारसे निवृत्त और मोक्षका उपाय संतोंके संगहीमें बताया ताते जिज्ञासु सत्संग करै ।

नारदपंचरात्रे ।

श्लोक-सत्संगाद्भव निस्पृहः प्रियगुणं श्रीशं प्रपद्यात्मवान् ।
प्रारब्धं परिभुज्य कर्म सकलं प्रक्षीणमायार्णवः ॥

भाषार्थ-हेशिष्य देखो नारदजीने यज्ञदेव राजासे कहा कि जिसनें महात्मावोंका संग किया और अन्तसमय सत्संगमें प्रीति भई ताको प्रारब्धकर्म जो तीन प्रकारका सो नष्ट होजाताहै संचित आगामी कर्तृत्व यानें क्रियमाण जो करते हो सो इन तीनोंका फल स्वर्ग और नरक अच्छा हुआ तो स्वर्ग खराब हुआ तो नरकमें बास और इनहीसे तीन ताप पैदा हैं अध्यात्म अधिभूत अधिदैव याने इन तीनोंका सार षट्-विकारभी दुःख भोगना उत्पत्ति गर्भमें बास तहां नानाप्रकारके मलमूत्रमें दुःख जायमान याने उत्पत्ति वृद्धि जरा (बुढ़ापा) नाश इनते बचनेका उपाय और मायाके आवरण कहेभये ऊपर मोह जालमें फँसा ता जालको काटनेवाला महात्मोंका संगही है याने जैसे किसी जालमें पक्षी फँसाहै ताको मूसाने काट दिया तब वह उड़गया इसी प्रकारसे भ्रमजालसे सत्संगही द्वारा यह जीव पक्षी निकस सकताहै ताते हे शिष्य तूभी संतोंका सत्संग कर और ताके द्वारा

था। एक दिन नींद में वह बच्चा मालिक का बांया हाथ चाटने लगा चाटते चाटते दांत लग जाने से हाथ का थोड़ा सा खून निकला। अब बच्चा कान टेढ़ा किये खून चाटने लगा। तकलीफ़ के मारे मालिक जग पड़ा और अपना हाथ हटाना चाहा। किंचित् हाथ हटाते ही शेर एकदम खड़ा हो गया और जाति स्वभावानुरूप "गुर्र्र्र्र्र्र्र्र्र्र्र्र्र" गर्जन कर उसने हाथ को पंजे के नीचे मजबूती से दबा लिया और फिर रक्त चाटने लगा। मालिक ने सोचा, "अरे बाप रे! अब तो मामला बड़ा बेढब है। यदि मैं इसको और भी प्यार करूँ तो यह मुझे फाड़ खाये बिना नहीं रहेगा" उसने निश्चय किया और तुरन्त सन्दूक में से पिस्तौल मँगवाया। पिस्तौल मिलते ही "रे नमक हराम" ऐसा कह कर तत्काल धड़ाके से गोली छोड़कर उसे मार डाला।

ऐ मेरे प्यारे भ्रातृ-भगिनी-मित्र गण! यदि कामरूपी शेर तुम्हारा शोषण करना चाहता हो तो तुम भी उसे फ़ौरन मार डालो। २५ वर्ष तक विषय से बिलकुल दूर रहो। उसका स्मरण तक मत करो क्योंकि पूर्वोक्त नव-मैथुनों में से प्रत्येक मैथुन ब्रह्मचर्य का नाशक है। अन्धे को जैसे शीशा दिखलाना व्यर्थ है। वैसे ही कामान्ध पुरुष को भी उपदेश करना व्यर्थ है। उल्लू तो दिन में हीं नहीं देख सकता परन्तु कामान्ध पुरुष दिन और रात दोनों में नहीं देख सकता। कामान्ध पुरुष डबल उल्लू होता है। जो विषय अत्यन्त दुःखप्रद, त्याज्य व नरकप्रद है वह मूर्खों को अत्यन्त प्रिय व मधुर मालूम होता है और जो परमार्थ मनुष्य को इसी जीवन में अमृत तुल्य फल शान्ति देने वाला और अन्त में मुक्तिप्रद है तथा जिसका आधार ब्रह्मचर्य के ऊपर ही मुख्यतः निर्भर है, वह परमार्थ उन्हें विष के समान कड़वी

जो शेष (बाकी) रहा उसके भोगनेके अर्थ यह जीव पंचभूतात्मक प्राकृत स्थूलशरीर धारण करता है फिर इस शरीरसे जो अच्छा कर्म किया तो निवृत्त हुवा और खराब कर्म किया तो षट्विकार युक्त वही मनुष्य शरीर फिर पाया अर्थात् इस कर्मभोगसे कोई नहीं बचा राजर्षि भर्तृहरिजीनेभी कहाहै ।

भर्तृहरिशतके ।

श्लोक—ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्मांडभांडोदरे
विष्णुर्येन दशावतारगहने क्षिप्तः सदा संकटे ॥
रुद्रो येन कपालपाणिपुटके भिक्षाटनं कारितः
सूर्य्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्मणे ॥ १ ॥

भाषार्थ—हे शिष्य देखो कर्मका ऐसा प्रताप है कि जिस ब्रह्माने कुम्हार की नाईं सृष्टि रचना कियाहै अर्थात् जैसे वह बासन बनाताहै ऐसे ब्रह्मा भी सृष्टि रचता है और विष्णु भगवानको अवतारग्रहण करनेवाला किया है महादेवको भिक्षाटन करनेवाला कियाहै और सूर्यको आकाशमें भ्रमायाहै ऐसे कर्मदेवको नमस्कारहै ।

गीतायाम् ।

श्लोक—" अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्" इत्यादि ।

भाषार्थ—श्रीकृष्णमहाराज अर्जुनसे कहैहैं कि हे अर्जुन कर्म अवश्यभोगने पडते हैं शुभहों चाहे अशुभ हों दोनोंका फल यावन्मात्रजीवोंको प्राप्त होता है मेरेको नहीं पुनः ।

भागवते दशमस्कन्धे ।

श्लोक—कर्मणा जायते जंतुः कर्मणैव विलीयते ।
सुखं दुःखं भयं क्षेमं कर्मणैवाभिपद्यते ॥

भाषार्थ—हे शिष्य देखो श्रीमद्भागवतमें श्रीगर्गाचार्यने भी नंदरायजीसे कहा है कि यह तुम्हारा पुत्र संसार अर्थात् प्रकृतिसे न्यारा है इस संसारका कर्ता हर्ता कर्म है यह केवल प्रेरकहै जीव जैसा कर्म करता है वैसा ही फल भोगनेके लिये इसको शरीर मिलता है कर्मसे जीव पैदा होताहै और कर्ममें ही

कामी पुरुष जीते जी ही नरक का अनुभव करने लगता है; वह जीते जी ही मुर्दा बन जाता है । जगद्गुरु श्री दत्तात्रेय मुनि कहते हैं:—"जो लोग गन्दगी से सदा भरे हुए मल मूत्र के स्थानों में रममाण रहते हैं, ऐसे नारकी जीव नरक से क्यों कर तर सकते हैं ? ऐ पुरुषो ! तुम चर्ममयी नरक-कुंड की ओर क्यों ताकते हो? क्या नरक के कीट बनने के लिए ? छी छी ! इससे तुम्हारा कैसे उद्धार होगा ? क्या यहीं स्वर्ग-सुख है । ज़रा तुमही सोचो कि यह स्वर्ग-भोग है या नरक-भोग ? इस प्रकार तो शूकर, कूकर और गोबर के कीड़े भी आनन्द मनाते हैं ! इनसे फिर तुम्हारा दर्जा ऊँचा कैसा ? ऊँचे दर्जे के लिये हमें अवश्य अपने आचार-विचार भी ऊँचे ही रखने चाहियें ! केवल मनुष्य की देह धारण कर लेने से कोई "मनुष्य" नहीं हो सकता । विद्या और विनय, तप व शान्ति, कान्ति व दान्ति (लावण्य तथा दमन शक्ति) गुण व अ-गर्व, धर्म व अदम्भ इत्यादि सद्गुणों से ही मनुष्य 'मनुष्य' बन सकता है और ईश्वरत्व को प्राप्त हो सकता है । परन्तु इन सब की जड़ एक मात्र ब्रह्मचर्य है, यह सत्य बात कभी न भूलो ।

कामान्ध मनुष्य तारुण्य के मद से विषय में प्रीति भले ही रखता हो और अपनी मनमानी भले ही करता हो; परन्तु वे ही विषय उसे आगे इस रीति से पटक देते हैं, जैसे पेड़ों को बाढ़ और आंधी ! बेचारा मोहवश विषय में फँस कर "सुख की बुद्धि" से स्त्री-संग करता है और अपने ही वीर्य का नाश कर अपने को धन्य व कृतार्थ समझता है; जैसे कुत्ता सूखी हड्डी को चबाते समय मुँह से निकले हुए ख़ून को सूखी हड्डी से निकला हुआ समझ कर अपना ही ख़ून चूस कर वह मूर्ख बड़ा ख़ुश होता है; जैसे बिच्छू

भाषार्थ–हे शिष्य देखो वेदमें भी दो मार्ग कहे हैं। एक कर्मकांड द्वितीय ज्ञानकांड तिसमें भी प्रथम कर्मही कहा है क्योंकि जिससे ज्ञानकी प्राप्ति होती है इसलिये अब कर्मका स्वरूप कहतेहैं कि कर्म कितने प्रकारके हैं कौन विधि कौन निषेध केसे कौन किये जातेहैं. किनका कौन फलहै ।

श्लोक–त्रिविधो विधिकूटः स्यान्नित्यनैमित्तकाम्यतः ।
नित्येऽकृते किल्विषं स्यात्काम्ये नैमित्तिके फलम् ॥

भाषार्थ–हे शिष्य वे विधिनिषेधवाले कर्म तीनप्रकारके हैं । "नित्यकर्म" "नैमित्तिककर्म" "सकामकर्म" ये तीन प्रकारके कर्म हैं नित्य कर्म "संध्या तर्पण" नैमित्तिककर्म "तीर्थमें पर्वस्नान" सकामकर्म कोई कार्यके अर्थ "अनुष्ठान पुरश्चरण जप यज्ञ" इत्यादि ये ऊपर कहे नित्य नैमित्तिक कर्म न करनेसे पुरुष प्रायश्चित्तका भागी होताहै यथा संध्या तर्पण श्राद्ध गुरुमंत्र आदिका जपइत्यादिभेदके कर्म हैं अबफल ।

शिवसंहितायाम् ।

श्लोक–द्विविधन्तु फलं ज्ञेयं स्वर्गो नरक एव च ।
स्वर्गो नानाविधश्चैव नरकोपि तथा भवेत् ॥

भाषार्थ–हेशिष्य! अब कर्मोंके फल सुनो अच्छे कर्मोंसे स्वर्गके सुख प्राप्त होतेहैं वे नानाप्रकारके हैं यथा इंद्रलोकमें बास अथवा अल्प थोडे पुण्यसे मर्त्य लोकमें राजा होना ऐसेही नरक नानाप्रकारके हैं यथा मनुष्ययोनि नीच जातिमें जन्म दारिद्र्य कुष्ठादि रोग तथा सूकर आदि योनिको धारण करना अनेकजन्मोंको धारण करना ।

श्लोक–पुण्यकर्मणि वै स्वर्गो नरकः पापकर्मणि ।
कर्मबंधमयी सृष्टिर्नान्यथा भवति ध्रुवम् ॥

भाषार्थ–हे शिष्य ! देखो पुण्यकर्मसे स्वर्गादिक प्राप्त होतेहैं और पापसे नरक प्राप्त होता है इसलिये विचारवान् पुरुष इन दोनोंसे भिन्न रहता हुवा कर्म करता हुवाभी फलकी इच्छा न करे क्यों कि सृष्टिका कारण कर्मही है ऐसा

सी लकड़ी डाल देने से आगी बुझ सकती है।" हम कहते हैं, "अधिक विषय सेवन करने से फिर तुम भी अकाल में बुझ जाओगे! एक शराबी ने ऐसा ही किया। एक दिन उसने खूब शराब पी ली। नतीजा यह हुआ कि एक ही घंटे में उसकी दुर्बल बनी हुई खोपड़ी नशे के मारे फट गई और वह मर गया। ययाति राजा ने अपने पुत्र की भी आयु ली और तमाम उम्र भर उसने विषय-सेवन किया परन्तु उसकी शान्ति नहीं हुई। अन्त में वह क्षयी बन गया, उसको क्षय हो गया। इसी कारण संत उपदेश करते हैं:—

(भजन ध्रुव-गज़ल की)

"विषयों से मन को तृप्त कराना नहीं अच्छा।
जलती अगिन को घी से बुझाना नहीं अच्छा॥ १॥
सुख भोगते ये जगत के सभी हैं नाशमान।
तृष्णा बढ़ा के जी को फँसाना नहीं अच्छा॥ २॥
है गच्छतीति* जगत् धाम दुःख का भारी।
रंग रंग के खेल देख लुभाना नहीं अच्छा॥ ३॥
"धन धाम इष्ट मित्र रूप नारि और पुत्र।
हरगिज़ घमण्ड इनका न करना कभी अच्छा॥ ४॥
'वामन' है आयु बीतती अब से भी ज़रा चेत।
दुर्लभ शरीर पाके गँवाना नहीं अच्छा॥ ५॥

अतएव, प्यारे भाइयो! जहाँ तक हो सके वहाँ तक, मनुष्य को

* जानेवाला किंवा बदलने वाला जगत्।

भाषार्थ–हे शिष्य ! देखो कर्मके फल दुःख और सुख हैं परंतु परिणाममें सुख ही अज्ञानके संग दुःख होजाता है विचार कर देखो तो सुखके निवासस्थान वैकुंठादि भी महाकल्पमें नाशको प्राप्त होते हैं । जब ब्रह्मा ही नहीं रहता तब ब्रह्माके रचेहुए लोक कब स्थिररह सकते हैं । इसलिये ही ज्ञानी पुरुष जिन्हें परत्वज्ञानहै वे इन कर्मोंमें नहीं फँसते हैं ।

श्लोक–तावत्कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता ।
मत्कथाश्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते ॥ १ ॥

भाषार्थ–हे शिष्य ! श्रीकृष्णमहाराजने उद्धवसे कहा कि हे उद्धव ! तबतक कर्मोंको किये ही जाना उपरामको नहीं प्राप्त होना कि जबतक मेरी कथासुनना आदिमें श्रद्धा नहीं उत्पन्न होवै वह श्रद्धा यह कि मेरी प्रेमलक्षणा भक्तिका प्रेम अर्थात् उन्मादसा चढना देहदशाकी विस्मृति होना ऐसी दशा होनेतक कर्म करना कर्मका त्याग नहीं कर्मके फलका त्याग करना ऐसा शास्त्र कहता है । कर्म अंतःकरणको साफ करताहै जैसे कि काँचपर रज पडनेसे मलिनता होती है और उसको रोज पोंछकर साफ किया जाता है ऐसेही कर्मद्वारा रोज अंतःकरणको साफ राखे क्योंकि अंतःकरण शुद्ध होने पर ज्ञानकी स्थिति होतीहै ।

श्लोक–कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥

भाषार्थ–हे शिष्य ! जो कर्म वेदोंसे हुये वे वेद परमेश्वरसे हुये ऐसे ही ब्रह्म सबमें व्याप्त है । इस प्रकार यज्ञाधिष्ठाता परमेश्वर यज्ञमें वर्तताहै । इसलिये हे शिष्य अब वे कर्म तुझसे कहताहूँ कि जिनसे अंतर और बाह्य शुद्धि ये दोनों हों प्रथम बाह्य अर्थात् देहशुद्धि यथा दंतधावन और स्नानादिक इसको वैद्यक शास्त्र भी कहता है । " धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलकारणम् ।" इति । अर्थ । धर्म अर्थ काम और मोक्ष इन सबका फल भोगनेका मुख्य कारण आरोग्य अर्थात् शरीरकी स्वच्छता स्नानआदिसे

११–प्रकृति का स्वभाव

प्रकृति का स्वभाव अत्यन्त कठोर और दयालु है। वह अत्यन्त न्यायप्रिय है। न्याय में वह क्षमा नहीं करना जानती। सदाचारियों के लिए प्रकृति परम प्यारी माता है और दुराचारियों के लिये वह पूरी राक्षसी है। वह स्वयं राक्षसी कदापि नहीं है। वह परम दयालु जगन्माता है। केवल दुराचारियों ही को वह राक्षसी जैसी प्रतीत होती है। परन्तु दण्ड में भी हमें सुधारने का ही उसका पवित्र हेतु होता है। ठोकर खाने ही से मनुष्य सावधान होता है।

आज अत्यन्त वीर्यनाश के कारण तरुण समाज अत्यन्त नाशोन्मुख हो रहा है और दिन पर दिन रसातल को जा रहा है। चाहे तुम कितने ही अँधेरे में और कितने ही चालाकी से वीर्य-नाश करो और अपने को कितना ही सुरक्षित व बुद्धिमान समझो और कुकर्मों को छिपाने की कैसी ही कोशिश करो, परन्तु वीर्य-नाश होते ही मृत्यु तत्काल तुम्हारे द्वार पर आ डटती है और तुम्हारा इन्तजार करती है। प्रकृति माता अपने हाथ में डंडा लिये तुम्हारी वह नीच कृति देखती है तथा प्रत्येक बूँद के लिये तुम्हारे मर्म स्थानों पर कठोर डंडा प्रहार करती है। ज्यों ज्यों तुम वीर्यनाश करोगे त्यों त्यों वह तुम्हें मारते मारते बेदम व अधमरा कर डालेगी। तब भी यदि नहीं चेतोगे व सुधरोगे तब अन्त में तुम्हारा इंतजार करती हुई मृत्यु की ओर तुम्हें, सड़े फल की तरह, फेंक देगी, तुम्हें उठा के नरककुण्ड में बिठा देगी !

आज कितने ही तरुणों के बदन पर हम उन डंडों की चोटों

भाषार्थ—हे सर्वदेवताओ मैं तुमको नमस्कार करताहूं क्यों कि जो यह ब्रह्मपुत्री शिखा है इसके खोलनेमें कोई विघ्न न हो। यह मन्त्र पढकर शिखा खोले और इसको साफ कर फिर बाँधे और यह मंत्र पढे।

शिखाबाँधनेका मन्त्र।

श्लोक—ब्रह्मनामसहस्रेण शिवनामशतेन च।
विष्णुनामसहस्रेण शिखाबंधं करोम्यहम्॥

भाषार्थ—ब्रह्माके हजार नाम शिवजीके हजार नाम और विष्णुके हजार नामोंके माहात्म्यसे निर्विघ्न मेरी शिखाका बंधन हो यह कह गायत्री मन्त्र पढ शिखाबंधन करै। पुनः ऊपर यह मन्त्र पढकर कुशसे अपने ऊपर जल सेचन करे।

प्रोक्षणमंत्र।

श्लोक—ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोपिवा।
यः स्मरेत्पुंडरीकाक्षं स बाह्याभ्यंतरः शुचिः॥

भाषार्थ—यह पढ ऊपर जल छिडक पश्चात तीन वार आचमन करे और "अनंताय नमः" "अच्युताय नमः" "गोविंदाय नमः" यह पढ फिर दहिने हाथमें जल लेकर संकल्प पढै।

संकल्प।

ॐ अद्य तत्सद्ब्रह्मणो द्वितीयपरार्द्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे जम्बूद्वीपे भरतखंडे आर्य्यावर्तैकदेशांतर्गते कलियुगे प्रथमचरणे पुण्यक्षेत्रे अमुकसंवत्सरे अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकगोत्रोत्पन्नोऽमुकनामाहं प्रातःसंध्योपासनकर्म करिष्ये। इति

अब जिज्ञासु पुरुष यह समझे रहै कि इन अमुकशब्दोंसे उसदिन जो संवत्सर जो महीना जो तिथि जो वार जो उस मनुष्यका नाम होवे संपूर्ण उच्चारण कर जल जमीनपर छोडदे पश्चात् फिर विनियोग छोडै।

और धन दोनों लूट लेते हैं। दवाओं से रोग "जड़" से अच्छे नहीं हो सकते। दवा से रोग थोड़ी देर के लिये दब सकते हैं सही, परन्तु कुछ अरसे के बाद वे दूसरी शक्ल में पैदा होते हैं। "मरज़ बढ़ता गया, ज्यों ज्यों दवा की" इसका यही प्रत्यक्ष प्रमाण है कि "ज्यों ज्यों डाक्टरों व वैद्यों की संख्या बढ़ती जाती है त्यों त्यों रोग और रोगियों की भी संख्या बढ़ती ही जाती है और इस बात को कोई जानना चाहता हो, तो वह अखबारों में दवाओं के विज्ञापनों को देख सकता है। प्यारे मित्रो, विदेशी लोग इन विज्ञापनों को देख कर दिलमें क्या सोचते होंगे ?

हम ही अपने डाक्टर हैं।

भाइयो ! लौटो ! प्रकृति माता की शरण में आओ। वह परम दयालु है। तुम्हारा जरूर सुधार करेगी। विश्वास रक्खो। प्रकृति माता की दया बिना कोई एक घण्टा भी नहीं जी सकता। नाक, कान, मुंह, मल, मूत्र, त्वचा इत्यादि द्वारा, बल्कि रोम रोम से, वह हमारे भीतर का संपूर्ण ज़हर हरदम बाहर निकाल कर फेंकती रहती है और हमें चंगा किया करती है। अतः हमें चाहिये कि प्रकृति के "पञ्चामृत" का अर्थात् शुद्ध हवा, प्रकाश, पानी, भूमि व आकाश (Space) इनका रोज यथेष्ट पान करें और कुकर्मों को त्याग कर सुकर्मों द्वारा अपना पुनरुद्धार कर लें। हमारा उद्धार हमारे ही हाथ में है। वस्तुतः हम ही अपने डाक्टर हैं, गुरु हैं।

पद—(राग—असावरी)

"कर्मों का फल पाना होगा। ध्रु" ॥
"क्यों न अरे तू चेत में आवे,
सभी ठाट तज जाना होगा।

पितृतर्पण ।

प्रथम आचमनकर पश्चात् पैंती पहिरै तीन कुशकी दहिने हाथमें दो कुशकी बांए हाथमें पहिर संकल्प करे ।

अथ संकल्पः ।

अमुक संवत्सरे अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुक नामाहं देवर्षिपितृतर्पणं करिष्ये प्रथम पूर्वको मुख और बांऐ कंधेऊपर जनेऊ फिर उत्तरको मुख और मालाकी तरह जनेऊ फिर दक्षिणको मुख करे और अपसव्य दक्षिण कंधेऊपर जनेऊ धारण करे इसप्रकार क्रमसे देव ऋषि तर्पणमें जलविषे यव और चावल पितृतर्पणमें तिल डारे इति ।

ॐब्रह्मा देवः आगच्छतु गृह्णात्वेतं जलाञ्जलिम् । ब्रह्म तृप्यताम् १ । विष्णुस्तृ० १ । रुद्रस्तृ० १ । प्रजापतिस्तृ० । देवास्तृप्यं० १ । छंदांसि तृ० १ । वेदास्तृ० १ । ऋषयस्तृ० १। पुराणाचार्यास्तृ० १ । गन्धर्वास्तृ० १ । इतराचार्यास्तृ० १ । संवत्सरः सावयवस्तृप्य० १ देव्यस्तृप्यं० १ अप्सरसस्तृ० १। देवानुगास्तृ० १ । नागास्तृ० १ । सागरास्तृ० १ । पर्वतास्तृ० १ । सरितस्तृ० १ । मनुष्यास्तृ० १ । यक्षास्तृ० । रक्षांसि स्तृ० १ । पिशाचास्तृ० १ । सुपर्णास्तृ० १ । भूतानि तृ० १ । पशवस्तृ० १ । वनस्पतयस्तृ० १ । औषधयस्तृ० १ । भूतग्रामश्चतुर्विधस्तृ० १ ।

यह देवतर्पण समाप्त अब मालाकी तरह जनेऊ करे ।

ऋषितर्पण ।

ॐमरीचिस्तृ०२। अत्रिस्तृ०२।अंगिरास्तृ०२ । पुलस्त्यस्तृ० २ । पुलहस्तृ० २ । प्रचेतास्तृप्यताम्० २ । वशिष्ठस्तृ० २ । भृगुस्तृ० २ । नारदादयस्तृप्यं० २ । इति ।

अब भी अंगोछा वा जनेऊ मालाकी तरह रक्खे उत्तरको तर्पणकरे ।

ॐसनकस्तृ०२।सनन्दनस्तृ० २। सनातनस्तृ० २। कपिल-

पिता अथवा गुरु यदि अधर्ममयी आज्ञा करते हों तो उनकी वह आज्ञा ध्रुव प्रह्लाद, शुक, आदि की तरह कदापि न मानो। भीष्मपितामह ने अपने ब्रह्मचर्य्य के भंग करने की गुरु की अनुचित आज्ञा बिल्कुल नहीं मानी; तब गुरु शिष्य में युद्ध छिड़ा। अन्त में परशुराम जी को उस महान् प्रतापी अखण्ड ब्रह्मचारी धर्मप्रतिज्ञ भीष्म के सामने हार माननी ही पड़ी। अहा! क्या ही यह ब्रह्मचर्य का प्रताप है? हमको भी अपने ब्रह्मचर्य के पालन में अब ऐसा ही दृढ़प्रतिज्ञ होना चाहिये।

"धैर्य्य न टूटै पड़े चोट सौ घन की।
यही दशा होनो चहिये निज मन की॥"

सचमुच 'हृदय से' चाहने वालों को जैसी बुराई सहल है, वैसी भलाई भी सहल है। अतएव मनुष्य को चाहिये कि वह अपने दुर्वृत्त मन को हठपूर्वक या विवेकपूर्वक विषय से हटावे। बुराई एकाएक दूर नहीं हो सकती यह बात सच है परन्तु "पुरुषस्य प्रयत्न शीलस्य असाध्यं नास्ति।" पुरुषार्थी पुरुष के लिये संसार में कुछ भी असाध्य व अशक्य नहीं है। हृदय से उचित प्रयत्न करने पर सब कुछ सरल है। अभ्यास से असाध्य भी साध्य हो जाता है। बड़े बड़े अफ़ीमची और शराबी भी अपनी मात्रा को थोड़ी थोड़ी घटाते घटाते अन्त में व्यसन-मुक्त हो गये हैं, इस बात को कभी न भूलो। वैसे ही हम भी सुधर सकते हैं।

उपासना इष्ट हो ।, प्रथम हाथमें जल लेकर इस प्रकार पढे । श्रीराधा मूलशक्तिः श्रीकृष्णो देवता इष्टभक्तिप्राप्त्यर्थे जपे विनियोगः फिर हृदयादिन्यास करे यथा गोपालसहस्रनाममें है । पुनः अपने इष्टदेवका ध्यान करे । यथा प्रकार ।

श्लोक--अंगे तु वामे वृषभानुजां मुदा विराजमानामनुरूपसौभगाम्॥
सखीसहस्रैः परिसेवितां सदा स्मरामि देवीं सकलेष्टकामदाम्॥ इत्यादि
ॐ श्रीराधाकृष्ण इति परो मंत्रः सर्वार्थसाधकः[1] ।

अर्थ--हे शिष्य ये कहे हुए ऊपरके कर्म अवश्य करना क्यों कि जिससे अन्तःकरणकी शुद्धि और ज्ञानकी प्राप्ति होती है और जिससे ज्ञानस्वरूप आत्माका ज्ञान होता है वह आत्मा सत् असत्के आभास विषयसे निवृत्त है । हे शिष्य इसप्रकार कर्म प्रकरण कह कर अब तुझसे धर्मप्रकरण कहताहूं ।

इति श्रीयुतशुक्लदुर्गाप्रसादात्मजप्रियादासकृतं श्रीशास्त्रसारसिद्धांतमणौ कर्मप्रकरणं सम्पूर्णम्॥ ३॥

धर्मप्रकरणम् ४.

शिष्य हे गुरु जी महाराज! आपने कर्मप्रकरण सुनाया इससे मैं परम आनंदित हुआ । अब कृपा कर धर्म विषय कहो कि धर्मका कैसा स्वरूप है और धर्म कै प्रकारकाहै । और वह कौन श्रेष्ठधर्महै कि जिससे भगवतकी प्राप्ति हो वह विधिवत् कहो ।

गुरुवचन ।

श्लोक-प्रवृत्त्यर्थो निवृत्त्यर्थो धर्मो हि द्विविधो मतः ।

भाषार्थ--हेशिष्य! शास्त्रमें दो प्रकारके धर्म कहे हैं एक प्रवृत्ति धर्म और दूसरा निवृत्ति धर्म है जिस धर्मसे स्वर्गकी प्राप्ति होवे वह प्रवृत्ति धर्म जिससे भगवत्की प्राप्ति होवे वह निवृत्ति धर्महै प्रवृत्तिधर्म यहकि वर्णाश्रमद्वारा यज्ञादि

१—मन्त्र यह अर्थ धर्म.काम् मोक्षका देनेवाला है ।

बाँधोगे तो मन तुमको जहाँ चाहे वहाँ पटक देगा, यह निश्चय समझो। क्या आपको इसका अनुभव नहीं है? "आत्मोद्धार कैसे हो?" इस पर सन्त कहते हैं "मन की कथनी से उलटी रीति पर चलो—उलटी चाल चलो। मन का गुलाम सब का गुलाम है। वह पंडित होने पर भी महामूर्ख है, बलवान होने पर भी महान दुर्बल है और राजा होनेपर भी पूरा दुखी, अभागा और भिखारी है।" मन का स्वामी ही सम्पूर्ण जगत् का स्वामी है, चाहे वह शरीर से भले ही दुर्बल हो। श्रीगोस्वामी जी कहते हैं:—

काम क्रोध मद लोभ की, जब लग मन में खान।
तुलसी पण्डित मूरखो, दोनों एक समान॥ १॥

अतः हमें चाहिये कि इस ग्रन्थ में दिये हुये सरल, श्रेष्ठ व अमूल्य नियमों द्वारा अपने मन को स्वाधीन कर ब्रह्मचर्य का सच्चा पालन करें तथा अपना सच्चा उद्धार कर लें।

१३—वीर्य की उत्पत्ति

"रसाद्रक्तं ततो मांसम् मांसान्मेदः प्रजायते।
मेदस्याऽस्थि ततो मज्जा मज्जायाः शुक्रसंभवः॥

—श्रीशुश्रुताचार्य

मनुष्य जो कुछ भोजन करता है, वह प्रथम पेट में आकर पचने लगता है और उसका रस बनता है; उस रस का पांच दिन तक पाचन होकर उससे रक्त पैदा होता है; रक्त का भी पांच दिन तक पाचन होता है और उससे मांस बनता है। पाचन की यह क्रिया एक सेकण्ड भी बन्द नहीं रहती। एक को पचा कर

भाषार्थ—हे शिष्य ! देखो वामन भगवान्ने राजा बलिसे कहा है कि हे राजन् तू धर्म ही को देखे रह तेरा सहायक धर्म ही काम आवेगा न कि स्त्री पुत्र माता जनक (पिता) सहोदर (भ्राता) विपुल बहुत धन राज्य ये संपूर्ण धर्मके विना वृथा हैं इनमें से कोई भी अंत में सहायक नहीं ये सब देहसंबंधी हैं विना अपने अच्छे अनुष्ठान या महात्माओंका संग या भगवद्भक्तिके और कोई भी काम नहीं आता ॥

महाभारते मोक्षपर्वणि ।

श्लोक—न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः ।
धर्मो हि नित्यः सुखदुःखे अनित्ये जीवो हि नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः॥

भाषार्थ—हे शिष्य पुरुषको चाहिये कि स्नेहके वश न हो स्त्री पुत्र भाई बंधुमें प्रीतिवाला न हो न लोभवश हो धनमें प्रीतिवाला न हो क्रोधवश हुवा किसीसे वैर न करे कामके वश पर स्त्रीसे प्रीति न करे अथवा राजाके भयसे वृथा साक्षी नदे जीवका नाश विचार कर देखो तो जितने देहके व्यवहार हैं वे सब अनित्य हैं इनके लिये धर्मका त्यागना अयोग्य है सुख दुःख ये अनित्यहैं जीव नित्य है इस लिये हे कौरवनंदन धर्मका परित्याग न करे पांडवोंके दूत बन श्रीकृष्णने दुर्योधनादिकोंके प्रति यह उपदेश किया है इस लिये धर्मही श्रेष्ठहै यह बात श्रुतिभी कहै है "धर्मो नित्यः" इत्यादि अन्यपुराणोंमेंभी हरिश्चंद्र तथा मोरध्वज आदिकोंने स्त्री पुत्र धनका लोभ त्यागकर धर्मही ग्रहण किया है इति ।

गीतायाम् ।

श्लोक—स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकंपितुमर्हसि ।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ॥

भाषार्थ—हे शिष्य । देखो गीतामें श्रीकृष्णभगवान्ने अर्जुनसेभी कहा है कि हे अर्जुन ! तू कंपित मत हो और क्षत्रियधर्मका परित्याग मत कर इसमें तत्पर हो क्योंकि इस देहका नाश होता है और आत्मा तो आनंदरूप और नित्य है इसमें कोई उपाधि नही इसलिये धर्म श्रेष्ठहै इति ।

जैसे मथने से दूध के प्रत्येक परमाणु से मक्खन खींचा जाता है उसी प्रकार पूर्वोक्त नवधा मैथुन द्वारा शरीर के समस्त परमाणुओं से वीर्य खींचा जाता है। उस समय शरीर की तमाम नसें हिल जाती हैं; और शरीर के प्रत्येक अवयवों को रेल की तरह बड़ा भारी धक्का पहुँचता है।

हस्त-मैथुन* और प्रत्यक्ष मैथुन को छोड़ अन्य सप्त-मैथुनों द्वारा जो वीर्य शरीर से पसीज कर भीतर पतन होता है वह अण्ड-कोप में आ ठहरता है। यह पतित वीर्य पदच्युत व क़ैदी राजा की तरह हतबल व तेजोहीन बन जाता है। वीर्य का पतन होते ही शरीर भी उसी क्षण निर्बल, निस्तेज, दु:खी व अल्पायु बन जाता है। जब तक तेल ऊपर चढ़ता है तभी तक दीपक की ज्योति प्रकाश फैलाती रहती है और ज्यों ज्यों तेल का नाश होता जाता है त्यों त्यों वह मन्द होते होते अन्त में बुझ जाता है। वैसे ही जब तक वीर्य ऊपर चढ़ता रहता है तभी तक शरीर में चमक-दमक, उत्साह आनन्द व बल दिखाई देता है और ज्यों ज्यों वह नीचे उतर कर नष्ट होने लगता है त्यों त्यों चमक-दमक, उत्साह आनन्द बल और आयु सभी धीमे पड़ जाते हैं और अन्त में जीवन-दीप भी बुझ जाता है—जीवन का सर्वनाश होता है।

वीर्य के ऊपर चढ़ने ही को शास्त्र में ऊर्ध्व-रेता कहते हैं और पतन को अधःरेता। अखण्ड ब्रह्मचारी में और जिसका एक मरतबे भी वीर्य पतन हुआ हो—इन दोनों में बहुत ही फ़र्क होता

*पाठकों को स्मरण होगा कि "हस्तमैथुन" में हमने वीर्यनाश के सभी अ-प्राकृतिक साधन समाविष्ट किये हैं।

भाषार्थ–हे शिष्य ! देखो जाबालि ऋषिने भी कहाहै कि जो धर्म रामायण भारत पुराण श्रुतिस्मृतियोंमें है वही श्रेय है और इनके बाह्य जो है वह त्याज्य है। यथा-जैनादिक।

शांडिल्यसंहितायाम्।

श्लोक–क्षमा सत्यं दमः शौचं दानमिन्द्रियसंयमः।
अहिंसा गुरुशुश्रूषा तीर्थानुशरणादयः॥ १॥
आर्जवं वाप्यलोभश्च देवब्राह्मणपूजनम्।
अनभ्यसूया च तथा धर्मः सामान्य उच्यते॥

भाषार्थ–हे शिष्य ! देखो अब मैं धर्मका स्वरूप कहताहूं इसको श्रवण करो क्षमा याने कोई अपनेको कटुवाक्य कहै ताको सहन करै सत्यबोलै दम नाम इंद्रियोंको दमन करै याने उनके वेगको रोके शौच याने अंतरबाह्यस्नानादि दानका देना किसी जीवको न मारे गुरुकी सेवा तीर्थयात्रा सर्वजीवोंपर दया ब्राह्मण तथा देवताओंका पूजन अतिथिसत्कार करे किसीसे ईर्षा न करे ये सामान्य धर्मके लक्षण हैं।

श्लोक–वाचा च चित्तेन च कर्मणापि यत्
संपालनं नित्यमवेक्ष्यशास्त्रतः॥
सत्यस्य तद्धर्ममिहोत्तमं बुधाः
प्राहुस्ततस्तं हि समाश्रयाऽचिरम्॥ १॥

भाषार्थ–हे शिष्य ! देखो वाणी करके मनकरके शरीर करके किसीको दुःख न दे और सर्वकाल शास्त्र अवलोकन करे तथा महात्माओंका सत्संग मिथ्या न भाषण करे सत्यका परित्याग न करे ऐसी धर्मशास्त्रकी आज्ञा है अब सर्वधर्मोंसे श्रेष्ठ धर्म जो कि भागवतमें उद्धवने प्रश्न किया, और श्रीकृष्णने सर्वधर्मोंको यथार्थरीतिसे कहा वे कहताहूं सुनों।

श्रीमद्भागवते एकादशस्कन्धे उद्धववचनम्।

श्लोक–यस्त्वयाभिहितः पूर्वं धर्मस्त्वद्भक्तिलक्षणः।
वर्णाश्रमाचारवतां सर्वेषां द्विपदामपि॥ १॥

बात है कि इतने कठोर परिश्रम से तीस दिन में प्राप्त होने वाली डेढ़ तोला अमूल्य व अतुल्य दौलत एक क्षण ही में फूँक डालना कितनी घोर मूर्खता है ? यह कितना घोर पतन है ? ऐसा पुरुष उस मूर्ख बाग़वान के समान है, जो तन, मन, धन से दिन-रात परिश्रम कर फूलों का सुन्दर बाग़ तैयार करता है और पैदा हुए असंख्य फूलों का इत्र निकलवा कर उसे मोरियों में डालता वा डलवाता है। आमदनी एक रुपया की खर्च तीस रुपयों का ऐसा जितना अन्धा, मूर्ख, पागल और भिखारी है, उससे करोड़ गुना वह मनुष्य मूर्ख, पागल, अन्धा, भिखारी, रोगी, दुःखी, अभागा और काल का शिकार है जो एक महीने से कहीं ज्यादा की वीर्य-सम्पदा एक दिन में खाक कर डालता है। एक मरतबे के वीर्यनाश से ही यदि मनुष्य की महा दुर्दशा होती है तब रोज़ दो-दो तीन मरतबे अथवा चौथे, आठवें दिन वीर्यनाश करने वाले फिर अति शीघ्र नष्ट होंगे इसमें संदेह ही क्या है ? अतः जिन्हें दीर्घायु व सुखी बनना है, उन्हें महीने में एक मरतबे से अधिक अथवा श्रीमनु महाराज के आज्ञानुसार 'ऋतुकाल' का सच्चा अर्थ समझ कर महीने में दो मरतबे से अधिक तो, कभी भी वीर्यनाश न करना चाहिये। नहीं तो उलटा अपना ही नाश हो जायगा, यह बात याद रक्खो।

ग्रीस (यूनान) के महा ज्ञानी तत्ववेत्ता साक्रेटीज़ (सुकरात) से किसी ने पूछा कि "स्त्री प्रसंग कितने मरतबे करना चाहिये ?" उत्तर मिला कि "जन्म भर में एक बार !" फिर पूछा "यदि इतने से शान्ति न हुई तो ?" "अच्छा, फिर साल भर में एक बार करे।" "उतने से भी मन न माने तो ?" "अच्छा फिर मास

भाषार्थ-हे अर्जुन देखो मैं धर्मका विनाश देख युग युग अर्थात् सत्ययुग त्रेता द्वापर कलियुग इन चारों युगोंमें जब जब दुष्ट बढतेहैं और धर्मकी हानि होती है तब तब उनका नाश कर गौ ब्राह्मण वेदोक्तधर्म इनका उद्धार करता हूँ यह बात आपने कही थी पुनः तैत्तिरीय उपनिषद्में भी कहा है । "धर्मं चर धर्मान्नप्रमादितव्यम्" । इत्यादि । अर्थ-हे पुरुष ! तू धर्मका आचरण (धारण) कर धर्मसे किसी कालमें प्रमाद न करना चाहिये इति हे कृपानाथ ! ये आपके ही मुखसे निकसे वचनहैं तैसे ही कृपा करो क्योंकि जिससे विधिवत् विधि निषेध धर्म सुननेकी श्रीमुखसे इच्छाहै ।

श्रीकृष्णवाक्यं-भागवते एकादशस्कंधे ।

श्लोक-धर्म्य एष तव प्रश्नो नैःश्रेयसकरो नृणाम् ।
वर्णाश्रमाचारवतां तमुद्धव निबोध मे ॥

भाषार्थ-हे उद्धव ! तुम्हारा प्रश्न धर्मके विषे है वह वर्णाश्रम तथा आचारवान् पुरुषोंको भगवद्धर्म श्रेष्ठहै । तहां प्रथम वर्णाश्रमधर्मोंको भी ग्रहण करे । वह पुराणोंमें कहाहै ।

"स्ववर्णाश्रमधर्मेण तपसः हरितोषणात्" इति ।

भाषार्थ-तात्पर्य यह कि अपने वर्णाश्रमके धर्मद्वारा ही हरि जो श्रीकृष्ण उनका भजन करे यह तप है । तहां पुनः ।

श्रुतिः ।

"ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो येषां पूर्वानुवदंति स्वे स्वे धर्मं आचरंति" इति ।

भाषार्थ-हे उद्धव देखो श्रुति भी यही प्रतिपादनकरै है कि, ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इन चारों वर्णोंने अपने २ वर्णधर्मद्वारा परमात्माका भजन करना श्रेष्ठहै हे उद्धव प्रथम मैं चारों युगोंका धर्म कहताहूं फिर वर्णाश्रमधर्म कहूँगा एकाग्रचित्तसे तिसको श्रवण करो ।

नष्ट होगी' ऐसी शंका करना ही व्यर्थ व मूर्खतापूर्ण है। प्रकृति शान्त होते हुए भी 'अनन्त है' बस इसी एक वाक्य में इस प्रश्न का मुँह-तोड़ उत्तर है। हमारे ब्रह्मचारी होने से अनन्त अर्थात् अन्त-रहित प्रकृति का अन्त कदापि नहीं हो सकता, यह बात हमें कभी न भूलनी चाहिए। अतः मित्रो! प्रथम अपने ही उद्धार की कोशिश करो। क्योंकि आत्मोद्धार ही लोकोद्धार है। यदि ऐसा न करोगे तो तुम्हारी चमगीदड़ की भांति उल्टी स्थिति होगी, निश्चय जानो।

१४—गृहस्थी में ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्यं समाप्याय गृहधर्मं समाचरेत्।
ऋणत्रय विमुक्त्यर्थं धर्मेणोत्पादयेत् प्रजाम्॥ १॥

ब्रह्मचर्य की अवस्था पूर्ण होने के बाद पचीस वर्ष की युवावस्था में गृहस्थ धर्म को स्वीकार करे और ऋणत्रय विमुक्त्यर्थ (देव-ऋण, ऋषि-ऋण व पितृ-ऋण इनसे छुटकारा पाने के हेतु) धर्म की विधि से सुप्रजा निर्माण करे, न कि कुप्रजा।

शास्त्रों में हमारे आचार्यों ने प्रकृति के नियमानुसार ब्रह्मचर्य के नियम पहले ही से बाँध रक्खे हैं। प्रकृति के नियमों के तोड़ने से किसी का भला नहीं हो सकता। यदि उन नियमों के अनुसार चले तो मनुष्य स्त्री के रहते हुए भी ब्रह्मचारी हो सकता है। अखण्ड ब्रह्मचारी में और गृहस्थ-ब्रह्मचारी में यद्यपि बहुत फर्क होता है, तब भी धर्म-नियम के अनुसार चलने वाला गृहस्थ-ब्रह्मचारी भी महान् तेजस्वी, ओजस्वी, यशस्वी, मनस्वी अर्थात् मनोनिग्रही व सामर्थ्य-सम्पन्न होता है। जिस स्थान में सच्चा

यजुर्वेदे माध्यंदिनीयशाखापुरुषसूक्ते ।

मंत्र-ब्राह्मणोस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः ॥
ऊरू तदस्ययद्वैश्यः पद्भ्याᳫँशूद्रोऽअजायत ॥ इति ।

वह ऊपर श्लोकके जो अर्थ इस सूक्तके मंत्रका अर्थ है । याने चारों वर्ण भगवत् विराटके यथायोग्य अंगोंसे भये हैं उनके कर्म धर्म वर्णयुक्त भये हैं वह आगे कहैंगे ऐसे ही चारो आश्रमकी भी उत्पत्ति हुई है यथा ब्रह्मचर्य गृहस्थ वानप्रस्थ संन्यास ।

चारों आश्रमोंकी उत्पत्ति ।

श्लोक-गृहाश्रमो जघनतो ब्रह्मचर्य्यं हृदो मम ।
वक्षःस्थानाद्वनेवासो न्यासः शीर्षणि संस्थितः ॥

भाषार्थ-हे उद्धव ! जैसे वर्ण विराट्से पैदा भये ऐसे ही चारों आश्रम विराट्भगवानके अंगसे पैदा भयेहैं वह ऐसे कि गृहस्थाश्रम जांघसे । ब्रह्मचर्य धर्म हृदयसे वानप्रस्थ धर्म वक्षःस्थल (छाती) से संन्यास धर्म मस्तकसे प्रगट भये हैं । इनके फल पूर्वकर्मानुसार हैं अब सब वर्णाश्रमोंके स्वभाव कहता हूं उनको हे उद्धव ! सुनो इत्यादि ।

श्लोक-वर्णानामाश्रमाणां च जन्मभूम्यनुसारिणीः ।
आसन्प्रकृतयो नृणां नीचैर्नीचोत्तमोत्तमाः ॥

भाषार्थ--हे उद्धव! सब वर्णधर्मके स्वभाव न्यारे२ जैसे जिनने नीचभूमि[1]में जन्म लिये वे नीचसंगवाले तादृशस्वभाववाले हुए जिन्होंने अच्छी भूमिमें जन्म लिये उन्होंनें सत्पुरुषोंके यहां प्रगटहो सज्जनोंका सत्संग किया उनके आचरण श्रेष्ठ व्यवहारमें परमगतिके अर्थ वही बर्ताव तदनुसार आचरण धारण रखते हैं।

चारों वर्णोंके स्वभाव ।

श्लोक-शमो दमस्तपःशौचं संतोषः क्षांतिरार्जवम् ।
मद्भक्तिश्च दया सत्यं ब्रह्मप्रकृतयस्त्विमाः ॥

भाषार्थ-हेउद्धव ! सबमें समता इंद्रियोंका वश करना भगवत्ध्यान अंतस् और बाह्य दोनों व्रत साफ संतोष जो मिला उसीमें संतुष्ट क्षमा याने

[1] भूमिका तात्पर्य कुलहै यहां पृथ्वी न जानना.

ऋतावृतौ स्वदारेषु संगतिर्या विधानतः ।
ब्रह्मचर्यंतदेवोक्तं गृहस्थाश्रमवासिनाम् ॥

—श्रीयाज्ञवल्क्य

"ऋतुकाल में अपनी स्त्री से (धर्मपत्नी से) विधियुक्त अर्थात् शास्त्राज्ञानुसार केवल सन्तान के हेतु समागम करने वाला पुरुष, गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी, ब्रह्मचारी ही है।" 'सन्तानार्थं च मैथुनम्' यह स्पष्ट व सख़्त शास्त्राज्ञा है, याद रक्खो। श्री मनुमहाराज कहते हैं—"मास में ऋतुकाल में केवल दो ही रात्रि में जो धर्मशास्त्राज्ञानुसार स्त्री-सेवन करता है वह धर्मात्मा पुरुष स्त्री रहते हुए भी ब्रह्मचारी है।"

इसमें का "ऋतुकाल❀" यह शब्द अत्यन्त महत्व का है। ऋतुकाल का मतलब स्त्री के रजोदर्शन काल का चौथा ही दिन नहीं है उस दिन यदि शिवरात्री एकादशी अथवा नवरात्र आया

---

* ऋतुकाल का सच्चा अर्थ जानना हो और घर में 'हीरे' निर्माण करने हों तो लेखक को "मन-वांच्छित सन्तति" नामक अत्यन्त महत्व पूर्ण करीब ४०० पृष्ठों की मौलिक किताब ज़रूर पढ़ो, मनन करो व आचरण में लाओ। इसमें का एक एक नियम लाख लाख रुपयों का है। किताब हृदय में ही रखने योग्य है। एक हज़ार आर्डर से आने पर छपवाना शुरू कर देंगे। मूल्य दो रुपया रहेगा। किताब में लगभग सात आठ सुन्दर चित्र भी रहेंगे।

भगवद्भक्ति करना यह तीनों वर्णोंका अधिकारहै परंतु प्रतिग्रह दान वेदपुराणका सुनाना ये ब्राह्मणके धर्म हैं ये तीनों कर्म ब्राह्मणकोही उचितहैं अब ब्राह्मणके कर्म और शरीरके निर्वाहक व्यवहार कहताहूं इससे भिन्न कर्म ब्राह्मणको त्याज्य है ।

श्लोक-प्रतिग्रहं मन्यमानस्तपस्तेजोयशोनुदम् ।
अन्याभ्यामेव जीवेत शिलैर्वा दोषदृक्तया ॥

भाषार्थ-हे उद्धव! ब्राह्मण को जब दान न मिले या क्षत्रिय अन्न न दे तो जो खेत कटे वहां पर जो अन्न परा रहता है उसको बीन लावे इसीको शिलवृत्ति कहेतेहैं अथवा इसमेंभी देहका निर्वाह न हो तो पाठशालामें पढावे और यज्ञ करावे परंतु नौकरी नीचसेवा न करे ब्राह्मणके ये लक्षण हैं न कि बडी चुटिया सफेद धोती जनेऊसे ब्राह्मण नहीं इसीमें प्रमाण ।

ब्राह्मणोपनिषदि ।

श्लोक-कर्मण्यधिकृता ये तु वैदिके ब्राह्मणादयः ।
तेभिर्धार्यमिदं सूत्रं क्रियांगं तद्धि वै स्मृतम् ॥

भाषार्थ-कर्ममें तत्परहो वैदिकधर्म संध्योपासन वेदका पाठन सूत्र (जनेऊ) काधारी ब्राह्मणहै ।

जाबालोपनिषदि ।

शिखा ज्ञानामयी न च विद्वानकेशधारणः ।

अर्थ-हे उद्धव ज्ञान ही शिखा (चोटिया) न कि विद्वान् बाल धारन बडी भारी चोटेया रखनेवाला ब्राह्मण नहीं इति । " उपवीतं तन्मयं" । अर्थ-याने मनकी वृत्तिका लय सोई यज्ञसूत्र (जनेऊ) है पुनः प्रमाण श्रुतिमें भी कहाहै "यज्ञोपवीतरस्यात्सयज्ञस्तं यज्वनं विदुः" अर्थ-यज्ञके विषय चित्त जाका लगा ज्ञानरूपी यज्ञमें मनके विकार सोई साकल्य होमना संतोष विचार क्षमा येही तीन सूत्र हैं न कि तीन सूतके ताग नहीं यज्ञोपवीत यज्ञसूत्र वहा सोई प्रमाण धर्मशास्त्रमें भी कहाहै सो प्रमाण ।

धर्मं शुक्रं च रक्षयेत् !" इसलिये सर्व प्रकार से प्रयत्नपूर्वक धर्म व ब्रह्मचर्य की रक्षा कीजिये। क्योंकि धर्म ही जीवन है और अधर्म ही मृत्यु है ! तथा ब्रह्मचर्य ही जीवन है और वीर्यनाश ही मृत्यु है।

१५—बाल-विवाह

वाल-विवाह यह प्रत्यक्ष काल-विवाह ही है। यह पूर्णतया ब्रह्मचर्य्य का नाशक है। वाल विवाह सर्वथा धर्म-विरुद्ध व अप्राकृतिक है। तथा वेद शास्त्र के प्रतिकूल* है। प्रकृति के नियमानुसार ही धर्मशास्त्र में नियम है। अतः वालविवाह प्रकृति एवं धर्म के विरुद्ध कैसा है सो अब सुन लीजिए—

(१) जो पेड़ जल्दी बढ़ते, जल्दी फूलते-फलते हैं (जैसे केला, पपीता, रेंड इत्यादि) वे उतने ही जल्दी नष्ट भी होते हैं। वैसे ही जो वालक वालिकायें जल्दी व्याही जाती हैं, जल्दी ऋतुमति होती हैं, (केवल ऋतु प्राप्त होना यही स्त्री की युवावस्था का

---

* वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम्।
अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममावसेत् ॥ १ ॥

सबसे श्रेष्ठ स्मृतिकार साक्षात् वेदमूर्ति मनु जी कहते हैं—' जब तक लड़का तीन दो वा एक वेद पूर्ण न सीख ले और कम से कम २५ वर्ष तक अखंड ब्रह्मचर्य व्रत पालन कर अपने को गृहस्थी चलाने के लिये पूर्ण समर्थ न बना ले तब तक अपनी शादी कदापि न करे। यही वेद की आज्ञा है।" स्त्रियों के लिये भी ऐसी ही आज्ञा है। इसके लिये प्रमाण :—

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।
अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीर्षति ॥

दिनिवृत्तः स एव ब्राह्मण इत्युच्यते ॥ श्रुतिः। अत एव ब्रह्मविद्ब्राह्मणः ॥

भाषार्थ—परोक्षज्ञानी रागद्वेषादिरहित शम दम संतोषादि धारनेवाला तृष्णा मोहसे निवृत्त ये लक्षण जिसमें हों वह ब्रह्मवित् यानें ब्रह्मके स्वरूपका जाननेवाला ब्राह्मणहै इसका प्रमाण भी अन्यग्रंथमें ।

ब्रह्मकर्मसंग्रहमध्ये ।

श्लोक—ब्राह्मणस्य हि देहोयं क्षुद्रकामाय नेष्यते ।
कृच्छ्राय तपसे चेह प्रेत्यानंतसुखाय च ॥

अर्थ—हे शिष्य जो ब्राह्मण या प्रकारसे कहे हुए आचरण बर्तते हैं और शूद्राचरण नीच कर्मोंका परित्याग करतेहैं वे ही ब्राह्मणहैं क्योंकि ब्राह्मणका देह केवल तपके अर्थ जो है धर्मशास्त्रके अनुकूल चलता है तिसको अंतमें नित्यानंद सुख की प्राप्तिहो जन्ममरणसे छूट जाताहै इति अब क्षत्रियधर्म सुनों मृगयादिक (शिकार) खेलै युद्ध और मल्लविद्या सीखै रात्रिमें जागरण कर ग्रामकी चोरोंसे रक्षा करै वैश्यलक्षण रोजगार करै घृतादि और धातु इन पदार्थोंको बेचै लेना देना करै साधु ब्राह्मणकी सेवा करै शूद्रलक्षण शूद्र सबकी टहल करे तीनो वर्णोंसे स्नानादिक कर्मद्वारा जो प्राप्त हो उसीमें संतुष्ट रहे हे उद्धव ये चारों वर्णके धर्म हैं इति अब चारों आश्रमोंके धर्म कहता हूं सुनो ।

चारोआश्रमधर्मवर्णन ।

वानप्रस्थो गृहस्थश्च ब्रह्मचारी तु कीदृशः ।
संन्यासी च कथं ज्ञेयो लक्षणानि निरूपय ॥

भाषार्थ— हेशिष्य उद्धवजी श्रीकृष्ण महाराजसे हाथ जोरकर प्रश्न किया कि हे नाथ जैसे आपने चारों वर्णोंके धर्म कहे वैसेही कृपाकर चारों आश्रम गृहस्थ ब्रह्मचर्य्य वानप्रस्थ संन्यस्त इन सबके पृथक् पृथक कर्म लक्षण कृपा कर कहो मेरी प्रार्थना है ।

भी बहुत नष्ट होते हैं। फिर आँवले जैसे बड़े होते हैं तिसमें से भी बहुत कुछ नष्ट होते हैं। जब वे और भी पुष्ट होते हैं तब कहीं वे आखिर तक उस पेड़ पर स्थिर रह सकते हैं। वैसे ही जो बालक-बालिकायें बचपन ही में ब्याहे जाते हैं उनमें से बहुत मर जाते हैं, जिसका अनुभव आज प्रत्यक्ष हम आप कर रहे हैं, और जो पचीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य पालन कर गृहस्थाश्रम में विधियुक्त प्रवेश करते हैं वे ही केवल सौ वर्ष तक जीवित रहकर जीवन का पूर्ण आनन्द लूटते हैं।

(५) कच्ची कलियाँ तोड़ने से पुष्पों की महक मारी जाती है। उनमें सुगन्धि नहीं मिल सकती। कच्चे फल रस हीन, कसैले और रोगकारी होते हैं। कच्चा भोजन पेट में अनेक रोग पैदा करता है वैसे ही कच्चेपन में विवाह करने और वीर्य को नष्ट करने से अर्थात् अ-पक वीर्य-पात, से नपुंसकता, दुर्बलता, क्षय, प्रमेहादि भीषण रोग उत्पन्न होते हैं, जो उस व्यक्ति को अकाल ही में मृत्यु की गोद में पहुँचाने में पूर्ण सहायक बनते हैं।

(६) कच्चा बीज कोई भी किसान खेत में नहीं बो सकता क्योंकि उससे खेती का और बीज वाले मालिक दोनों का नाश होता है। किसान लोग खेत में बोने वाले बीज को प्राण के तुल्य सम्भाल कर रखते हैं। यदि कभी भूखे भी रहना पड़े तो भी कुछ परवाह नहीं करते परन्तु उस बीज को ऋतुकाल (फसल) तक हाथ नहीं लगाते। वैसे ही मनुष्य को भी अपने वीर्यरूपी बीज को २५ वर्ष तक पूरे तौर से संभालना चाहिये और नव-मैथुन से सर्वथा बचा रहना चाहिये। "जैसा बोओगे वैसा ही काटोगे" यह ध्यान में रक्खो।

भाषार्थ-अग्नि सूर्य्य गुरु वृद्ध ब्राह्मण गौ वेदका पाठ गायत्रीका जप एकांतमें निवास सेवे साँझको भिक्षा ले सोभी सात घरोंसे आटा माँग अग्निमें रोटी डार खावे अथ वा फलाहार लेवे उन वस्तुओंको न खाय कि जिनसे प्रमाद बढै इति ।

गृहस्थलक्षण ।

श्लोक-गृहार्थी सदृशीं भार्य्यामुद्वहेदजुगुप्सिताम् ।
यवीयसीं तु वयसा यां सवर्णामनुक्रमात् ॥

भाषार्थ-हे उद्धव जब द्वादश वर्ष वीत जायँ तब ब्रह्मचर्यसे गृहस्थाश्रम ग्रहण करे तो अपने समानवालेकी कन्या लेवे शास्त्रविधिसे विवाह करे और विधिवत् बर्ताव करे द्वितीय स्त्रीकी इच्छा हो तो शास्त्रोक्तसे ग्रहण करे कब कि जब प्रथम स्त्रीके पुत्र न हो रोगिणी हो व्यवहारमें भ्रष्ट हो तब, और विहारभी जैसे शास्त्रकी आज्ञा वैसे, मासिकधर्ममें चाररोजं त्याज्य है सो कहते हैं "प्रथमेहनि चांडाली द्वितिये ब्रह्मघातिनी । तृतीये रजकी ज्ञेया चतुर्थेहनि शुध्यति इति॥" प्रथम दिन जो स्त्रीको छुए तो मानों चांडालकी स्त्रीसे स्पर्श दूसरे दिन मानो ब्राह्मणको मारनेवालीसे स्पर्श तीसरे दिन धोबिनकी सम चौथे दिन शुद्ध होती है तब इस विधिसे ग्रहण करे "पंचमे सप्तमे चाथ नवमैकादशे दिने । षोडसे दिवसे स्पर्शः पश्चात्संगं परित्यजेत्" अर्थ-पांचवेंदिन सातवें दिन नवें दिन ग्यारहवें दिन सोलहवें दिन तक स्त्रीसंग करे बाद स्त्रीसंग न करे नहीं तो "कृतो हि नित्यः स्त्रीसंग आयुर्बलविनाशकः" अर्थ-नित्य पशुवत् स्त्रीसंग किये आयु छिन्न बलकी हानि बुद्धिका नाश होताहै और इन आगे कहे दिवसोंमेंभी स्त्रीसंग न करे तथा च गर्भोपनिषदि--श्राद्ध एकादशीपर्वतीर्थेषु गुरुसन्निधौ सूर्य्योदये तथा सायं स्त्रीसंगं विवर्जयेत् । अर्थ-श्राद्धके दिन एकादशीके दिन व्यतीपात ग्रहणादिकपर्व तीर्थोंमें गुरुद्वारे सूर्यके उदयमें सायं कालमें इन समयोंमें स्त्रीप्रसंग वर्जितहै । और इतनी स्त्रियोंसे संग न करे तहाँ प्रमाण ।

श्री भगवान स्कन्ध कहते हैं:—"जो पुरुप धन की अथवा दहेज के लालच से अपनी अबोध कन्या किसी वृद्ध को—खूसट बूढ़े को, नीच को दुराचारी व्यभिचारी को कुरूप को अर्थात् अन्धे, लंगड़े, लूले, कुबड़े, रोगी, कोढ़ी, अपाहिज—इनमें से किसी को अथवा दुर्गुणी, दुर्व्यसनी को यदि व्याह दें तो वह मरने के बाद नीच पिशाच योनि में बराबर जन्म लेता है और अपने नीच कर्मों के नीच फल भोगता है।

बाल-विवाह तथा वृद्ध-विवाह आदि दुष्ट-विवाहों की कुप्रथायें उठा देने ही से देश में ब्रह्मचारी बालक-बालिकायें उत्पन्न हो सकती हैं और उनकी बागडोर एक मात्र माता-पिताओं ही के हाथ में है! अतएव ऐ माता-पिताओ! अब विवेक से काम लो। लकीर के फकीर मत बनो। धर्म के तथा प्रकृति के नियमानुसार चल कर पुण्य के भागी बनो और कुल तथा देश का उद्धार करो।

१६—वीर्य का प्रचण्ड प्रताप

समुद्रतरणे यद्वत् उपायो नौः प्रकीर्तिता।
संसार तरणे तद्वत् ब्रह्मचर्य्यं प्रकीर्तितम्॥ १॥

"जैसे समुद्र के पार जाने के लिये नौका ही श्रेष्ठ साधन है वैसे ही इस भव-सागर से पार जाने के लिये अर्थात् सब दुःखों से मुक्त होने के लिये ब्रह्मचर्य ही उत्कृष्ट साधन है।" क्योंकि "ब्रह्मचारी न कांचन आर्तिमाच्छंति।" अर्थात् "ब्रह्मचर्य ही से सम्पूर्ण सुखों की उत्पत्ति है।" ऐसी श्रुति है।

सम्पूर्ण विश्व में प्राणिमात्र में जो कुछ जीवन-कला दिखाई देती

मोहमें न फँसे यह समझे जैसे पुरुष धर्मशालामें रातको ठहरतेहैं। भोरहुए चल देतेहैं। इसीभाँति गृह समझे और सज्जनोंका सत्संग करे।

श्लोक–पुत्रदाराप्तबंधूनां संगमः पांथसंगमः।
अनुदेहं वियंत्येते स्वप्नो निद्रानुगो यथा॥

भाषार्थ–पुत्र दारा बंधु ये जैसे मार्गके संबंधी वैसे इन्हें जानों और इनमें प्रीति कम राखे यह स्वप्नकी संपत्ति है तासे विचारवान् ऐसे गृहस्थाश्रमको सेवन करे कदापि न ख्याल करे कि मेरा है यह सब मिथ्याहै।

वानप्रस्थधर्मलक्षण।

श्लोक–वनं विविक्षुः पुत्रेषु भार्यां न्यस्य सहैव वा।
वन एव वसेच्छांतस्तृतीयं भागमायुषः॥

भाषार्थ–हेशिष्य वानप्रस्थधर्मसुनो। जब आयुका तीसराभाग आवे तब याने पचास वर्षसे ऊपर गृहस्थीका भार ज्येष्ठ पुत्रको सौंप स्त्रीसंग ले अथवा वह पुत्रके समीप रहे तौ वहीं छोडदे और आप किसीवनमें जाय बसै।

श्लोक–कन्दमूलफलैर्वन्यैर्मेध्यैर्वृत्तिं प्रकल्पयेत्।
वसीत वल्कलं वासस्तृणपर्णाजिनानि च॥

भाषार्थ–कन्द मूल फलोंका भोजनकरे भोजपत्र पहिरे तृणकी कुटी बनाले तृण अथवा मृगचर्म बिछाय भगवत्ध्यानमें मग्न रहे गृहमें चित्त न जाय।

श्लोक–केशरोमनखश्मश्रुमलानि बिभृयाद्दतः।
न धावेदप्सु मज्जेत त्रिकालं स्थंडिलेशयः॥

भाषार्थ–केश याने बाल डाढी मूछ इत्यादिक न बनवाना नाईको न छुए और न बालोंको स्याह करे न तेल डारे तीनकाल स्नान करे गायत्रीका जप कर शरीर शुद्ध करे। दृष्टि बंद कर अन्तसमें भगवन्मूर्तिका ध्यान करे ग्राममें न जाय।

श्लोक–ग्रीष्मे तप्येत पंचाग्नीन्वर्षास्वासारषाड् जले।
आकण्ठमग्नः शिशिरे एवं वृत्तस्तपश्चरेत्॥

"जो कुमार ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्यरूपी तप*के तपस्वी हैं और जिन्होंने सुविद्या (वेद) से अपने को पवित्र बना लिया है वे ही केवल अद्भुत और कठिन से कठिन कर्मों को कर सकते हैं और इस दुस्तर संसार-सागर से तर सकते हैं।"

ब्रह्मचारी पुरुष सर्वत्र दिग्विजयी होते हैं; उन्हें कभी अपयश नहीं मिलता। सम्पूर्ण अपयश का मूल एक मात्र वीर्यहीनता ही है! वीर अभिमन्यु का नाश क्यों हुआ? वह समर में जाने के पहले भारत-वंश विस्तार का "बीज" आरोपण करके गया था। पृथ्वीराज क्यों पकड़ा व मारा गया? कहते हैं युद्ध में जाते समय उसकी कमर उसकी स्त्री ने कस दी थी! जो वीर्य को नष्ट करता है, वह हर जगह नष्ट किया जाता है और जो वीर्य को धारता है वही सब जगह विजयी होता है सच्चा ब्रह्मचारी काल का भी काल होता है! दुश्मन भी उसके सामने कान्तिहीन पड़ जाते हैं। "आत्मिक तेज" जिसको अंग्रेज़ी में परसनल म्याग्नेटिज़्म् (Personal Magnatism) अथवा तेजोबल यानी परसनल ओरा (Personal Aura) कहते हैं, ब्रह्मचारी में कूट कूट कर भरा रहता है, जिसके प्रताप से लोग उस पर अनायास लट्टू हो जाते हैं। वह जो कुछ कहता है, वही प्रिय व सत्य मालूम देने लगता है। और सब के चित्त में उसके लिये पूज्यभाव पैदा होता है।

एक धनी अच्छे अच्छे कपड़े पहिनता है, चेहरा भी उसका सफ़ेद होता है, पर उसके तरफ़ देखते ही, हमारा कुछ भी अपराध न करने पर भी, हम में एकाएक उसके लिये तिरस्कार बुद्धि जागृति

* ब्रह्मचर्य परंतपः।" ब्रह्मचर्य ही सब से श्रेष्ठ तपश्चर्या है।

भाषार्थ-जब ब्राह्मण संन्यास लेनेको तत्पर होताहै तब देवता स्त्री पुत्रादि द्वारा नाना प्रकारके विघ्न करातेहैं कि यह हमारी समताको न पावे इसलिये इनके विघ्नोंसे न डरे इनसे मुख मोड़ संन्यास धारण करे क्यों कि यही इसका परम कल्याण है।

कोयं संन्यास उच्यते कथयति संन्यस्तो भवति ॥ इति ।

भाषार्थ-हे शिष्य ! नारदपरिव्राजक उपनिषदमें कहा है कि संन्यासका तात्पर्य समझे कि संन्यास क्या वस्तु है तब संन्यास ले नहीं उभयभ्रष्ट-याने इसलोक परलोक दोनोंसे गये। परमार्थ भी न सिद्धहुवा और यहां स्त्री पुत्रादिकोंके भी सुखसे गया"अज्ञानिषु च वैराग्यं क्षिप्रमेव विनश्यति" इति । अर्थ--ज्ञानके विना वैराग्य शीघ्र नष्ट होजाता है पुनः प्रमाण ।

बृहन्नारदीये ।

श्लोक-गृहं वस्तु सुतं दारान्सुखार्थं हि विसर्जयेत् ।
वर्णधर्मकुलधर्मशिखासूत्रविनाशकः ॥

भाषार्थ-गृह धन पुत्र स्त्री वर्णधर्म कुलधर्म शिखासूत्र इनके त्यागनेवाला संन्यासी नहीं संन्यासी ऐसा चहिये सो तिसको सुनो मैं कहताहूँ । यह बात उपनिषद्में भी है ।

मैत्रेयोपनिषदि ।

श्लोक-अहंकारसुतं वित्तभ्रातरं मोहमंदिरम् ।
आशापत्नीं त्यजेद्यावन्न तु मुक्तो न संशयः ॥ १ ॥
ममतामोहमयी माता जातो बोधमयः सुतः ।
एकमेवाद्वितीयं यद्गुरुवाक्येन निश्चितम् ॥
एतदेकांतमित्युक्तं न मठे न वनांतरे ॥ २ ॥
कर्मत्यागान्न संन्यासी न प्रैषोच्चारणेन तु ।
संधौ जीवात्मनोरैक्यं संन्यासः परिकीर्तितः ॥
वमनाहारवद्यस्य भाति सर्वेश्वरादिषु ।

एक तरफ चारों वेदों का पुण्य और दूसरी तरफ ब्रह्मचर्य का पुण्य, दोनों में ब्रह्मचर्य ही का पुण्य विशेष है।

ब्रह्मचर्य के प्रताप से ही श्री भीष्मपितामह के सामने उनके महान प्रतापी गुरु परशुरामजी को हार माननी पड़ी। इतना ही नहीं किन्तु श्रीकृष्ण भगवान् को भी उनके सामने अपना प्रण भूल कर आखीर में झुक ही जाना पड़ा! अहा! कहते रोवें खड़े हो जाते हैं! श्री हनुमान जी ने एक ही घूंसे से इतने बड़े भारी प्रतापी रावण को बेहोश कर दिया और उसके मुख से खून बहाया। एक ही उड़ान में समुद्र को लांघना, बड़े बड़े पर्वतों को सहज ही में उठा ले आना और काल के भी मुंह में थप्पड़ लगाना, यह किस का सामर्थ्य है? यह सब अखण्ड ब्रह्मचर्य का ही सामर्थ्य है! ब्रह्मचर्य से मनुष्य में निस्संशय अद्वितीय ब्रह्मतेज प्रकट होता है, जिसके कारण वह बड़े बड़े अद्भुत कार्य बड़ी आसानी से कर दिखलाता है। आज तक जो कुछ बड़े बड़े धार्मिक व सामाजिक परिवर्तन हुए हैं वे सब ब्रह्मचारियों ही के द्वारा अथवा ब्रह्मचर्य ही के बल पर हुए हैं।

वीर्यहीनता के कारण आज हम लोगों में अपने पूर्वजों की अद्भुत शक्तियों में भी सन्देह प्राप्त हो रहा है। क्यों न हो! हमारे ही सौ वर्ष तक जीवित रहने का यदि हमें सन्देह है, तो फिर ईश्वरीय शक्तियों के लिये सन्देह प्राप्त होना स्वाभाविक बात है! पुष्पक विमान के लिये भी तो हमें पहले ऐसा ही सन्देह था? परन्तु आज जब प्रत्यक्ष विमानों को देख रहे हैं तब चुप मार कर सिर हिला कर कहने लगे कि "होगा भाई, ये लोग यंत्र से चलाते

चिंतवन इन वासनाओंको "न्यांसयेत्" त्यागे वह न्यास (त्याग) करनेवाला संन्यासी है ।

तुरीयातीतोपनिषदि ।

श्लोक-संन्यासी चतुर्विधो भवति ।

भाषार्थ-संन्यासी चार प्रकारके कोई शास्त्रसे छः प्रकारके कहते हैं हंस परमहंस तुरीयातीत कुटीचक बहूदक ये दो भेद हैं तिनहीमें अतीत अवधूतभी हैं तिनके कर्मस्वरूप न्यारे न्यारे कहताहूं सो सुनो ।

कुटीचकधर्म ।

श्लोक-कुटीचकः शिखायज्ञोपवीतदंडकमंडलुधरः ।
कौपीनशाटीकन्थाधरः । एकत्रान्नमर्दन्नपरः ॥
श्वेतोर्द्धपुंड्रधारी दंडहस्त इति । पुनः । त्रिदंडहस्तः ।
सितयज्ञसूत्रकाषायांबरोर्द्धपुंड्रधारी इति ॥

भागवते एकादशे ।

श्लोक-बिभृयाच्चेन्मुनिर्वासः कौपीनाच्छादनं परम् ।
त्यक्तं न दंडपात्राभ्यामन्यत्किंचिदनापदि ॥

भाषार्थ-हे शिष्य ! कुटीचक संन्यासी गेरूरँगे वस्त्र पहिरे चुटैया राखे जनेऊ पहिरे त्रिदण्ड धारण करे सफेद मृत्तिकाका ऊर्द्धपुंड्र धारण करे कमंडलु याने काठका पात्र धारण करे मठ बनायके रहे । इति । भागवतमें कहाहै कि जितनेमें अंग ढके उतना वस्त्र ले और दंड कमंडलु धारण करे अब कहेहैं कि, त्रिदंडका तात्पर्य यह नहीं कि तीन बांस एकमें बांध हाथमें ले यह तो बाहिर सूचनके अर्थ अन्तरके सुनो ।

श्लोक-मौनाऽनीहानिलयमा दंडा वाग्देहचेतसाम् ।
न ह्येते यस्य संत्यंग वेणुभिर्न भवेद्यतिः ॥

भाषार्थ-तीन दंड कौन ? वचनदंड याने मौनी रहे । देहका दंड सकामकर्म न करे । चित्तका दंड प्राणायाम करे । जिसके ये दंड नहीं सो केवल बांस दंडधारी संन्यासी नहींहै ।

भी कुछ हरज नहीं। उन्हें भूल जाओ। "ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्य्य लाभः।" यह कपिल महामुनि का सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के अनुसार आज भी हम फिर से ब्रह्मचारी वन सकते हैं। और तन-मन-धन से वीर्यधारण कर अपना तथा देश का पुनरुद्धार कर सकते हैं। क्योंकि "वीर्यधारणं ब्रह्मचर्यम्।" वीर्यधारण का नाम ही ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य ही में सच्ची शक्ति है और शक्ति में ही सच्ची मुक्ति भी है।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं—"सच्चे दिल से मेरी शरण आने से वड़े वड़े पापात्मा भी पुण्यात्मा व महात्मा हो गये हैं। तुमभी मेरी शरण आओ। मुझे सर्वत्र व्यापमान देखो। प्रत्येक स्त्री में मातृभाव रखो। स्त्री मात्र में मेरा ही रूप देखो। मैं तुम्हारा अवश्य अवश्य उद्धार करूंगा।"

अहह! भगवान् के इस आज्ञानुसार यदि हम ६ ही मास तक ब्रह्मचर्य का मन-क्रम-वचन से सच्चा पालन करके देखेंगे तो अपना वहुत ही रंग वदला हुआ हमें प्रत्यक्षजान पड़ेगा। चेहरे की पाण्डुरता नष्ट हो,चेहरा तेजस्वी वन जायगा। आँखों की ज्योति वढ़ जायगी। शरीर की दशा वहुत कुछ सुधर जायगी। आत्म-विश्वास वढ़ जायगा। और आत्म-विश्वास वढ़ जाने से हम आत्मोन्नति के पथ में और भी अग्रसर होंगे और चारों ओर अपनी कीर्ति सुगन्धि फैलाकर सभी के मुख से धन्य धन्य कहलायेंगे।

"भजन।"

"वार वार समझाय रहा हूं,
मान ले रे मन मेरी कही को॥ १॥

परमहंसोपनिषदि-परमहंसलक्षणम् ।

श्लोक-हंसःपरमहंसस्तन्मयपूर्वकं कटिसूत्रं कौपीनदंडकमंडलुं सर्वमप्सु विसृज्याऽथ जातरूपाधरश्चरेत्।न योगशास्त्रप्रवृत्तिःन सांख्यशास्त्राभ्यासः न मन्त्रशास्त्रव्यापारः न परप्राणिनामसंकीर्तनं परोपघातकर्म करोति तत्फलमुक्तं भवेत्॥ मधुकरे करपात्रेण पञ्चसप्त गृहाणां तु भिक्षते क्रियाव्रतम्।गोदोहनमाकाङ्क्षेन्निष्क्रांतो न पुनर्व्रजेत् ग्राममेकरात्रं तीर्थे त्रिरात्रं पत्तनं पञ्चरात्रं क्षेत्रे सप्तरात्रमनिकेतः स्थिरमतिरनाग्निसेवी निर्विकार इत्यादि ।

भावार्थ-हे शिष्य! हंस परमहंसके लक्षण सुनो हंस परमहंस इनके शिखा (चुटैया) जनेऊ कमंडलु और दंडका त्याग है इसमें प्रमाण " ज्ञानदंडो धृतो येन काष्ठदण्डो वृथा करे"।अर्थ-ज्ञानका दंड जिसने धारण किया उसे हाथमें बाँसलेनेका कुछ प्रयोजन नहीं । इति " कर उभयस्मिन्पात्रम् " अर्थ-दोनों हाथ मिलायके सरोवरमें जल पिये विचार रूप जनेऊ तृष्णाछटा सोई शिखा उसका त्याग परमहंसजाति आत्मानन्दरूप है और न हठयोगके कर्म करे न सांख्यशास्त्र देखे न कोई तंत्र मन्त्रके ग्रंथ केवल भगवत् सच्चिदानंद श्रीकृष्णके नाम कीर्तन करे। बाजा न सुने नृत्य न देखे न स्त्रियोंको देखे भिक्षा पांच वा सात घरसे लेवे देर तक न ठहरे मिले व न मिले गाय जितनी देरमें दुही जाय उतनी देर ठहरे ग्राममें एक रात्रि तीर्थमें तीन रात्रि बदरीनारायण ऐसे धाममें सप्तरात्रि ठहरे मनकी स्थिरता यही एकांत विकार जो रागादि इनसे रहित न कि अग्निको न छूनेवाला संन्यासी ।

गीतायां श्रीकृष्णः ।

श्लोक-अनाश्रितं कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः ॥

भावार्थ-हे शिष्य ! श्रीकृष्णजीने महाराज अर्जुनसे कहा है कि हे अर्जुन कर्म करे यथा संध्योपासन परन्तु इनमें फलबुद्धि न करे और जो

यदि बालक जानते होते कि उनके ही किए हुए कुकर्मों के कारण उनकी ऐसी दुर्दशा हुई है ; उनके कुकर्मों के फल उन्हीं को भोगने पड़ते हैं, उस समय दूसरा कोई भी साथी नहीं होता है ; यदि वे जानते होते कि काम से मनुष्य बेकाम बन जाता है और अकाल ही में मर जाता है ; तो वे क्या कभी कुकर्मों में प्रवृत्त होते ? कदापि नहीं ! अज्ञान ही से मनुष्य कुकर्मों में प्रवृत्त होता है और अपना नाश कर लेता है । इसमें कोई सन्देह नहीं है कि अज्ञान ही से मनुष्य गड्ढे में जा गिरता है। जान बूझ कर गड्ढे में कूद पड़ने वाले को एक तो परोपकारी महापुरुष समझना चाहिए या तो स्वार्थान्ध या मोहान्ध पतित पुरुष समझना चाहिए। भला ऐसे आत्मघाती को कौन तार सकता है ?

यदि कितना ही बढ़िया पकान्न तुम्हारे सामने रक्खा जाय और तुम्हें यह मालूम हो जाय कि इसमें विष मिलाया हुआ है, तो क्या कभी तुम उस पकान्न को खाओगे ? हमें पूर्ण विश्वास है कि तुम उस पकान्न को कदापि नहीं खाओगे ! बल्कि वहाँ से तत्काल उठ के चले जावोगे । वैसे ही सच्चा आत्मोद्धारक स्त्रियों के और अन्य मोहक पदार्थों के बाहरी रंग-रूप में कदापि नहीं भूलता; वह फ़ौरन वहां से हट जाता है और अपने को बचा लेता है । अज्ञानी व मोहान्ध पुरुष ही उनमें फँसते हैं और दीपलुब्ध पतंग की भाँति जल के खाक हो जाते हैं। अज्ञान ही मृत्यु है और ज्ञान ही जीवन है ! "ज्ञानाग्निःसर्व कर्माणि भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन।" भगवान कहते हैं:—"ज्ञानाग्नि से मनुष्य के संपूर्ण पाप-कर्म दग्ध हो जाते हैं और शुभ कर्मों से उसका उद्धार होता है।"

हमें अब पूर्ण विश्वास है कि हमने बालक-बालिकाओं को

उपाय बताय गये उससे वह किसान इस लोकका सुख भोग कर अंतमें नित्य श्रीकृष्णधाम गो लोकका निवासी हुआ और जन्म मरण से छूटा। इति। इस लिये हेशिष्य! यह सदाव्रत कल्पवृक्ष जैसे वृक्षके ऊपर कौआ गीध बैठते हैं तो कोई कालमें उसपर हंस भी बैठतेहैं ऐसे ही रोज कंगाल आतेहैं तो अन्न जलके आसरे कभी महात्माभी कृपाकरते हैं जैसे लगानेवाला वृक्षकी सेवा करता है तैसे सदाव्रतका देनेवाला भी वैसे उसपर दृष्टि कर प्रीतिरूपी जलसें सींचता रहे क्यों कि जिससे हरा बना रहे इति।

इति श्रीयुतशुक्लदुर्गाप्रसादात्मज अ०र०प्रियादासशुक्लकृतं श्रीशास्त्रसारसिद्धांतमणौ धर्मप्रकरणं सम्पूर्णम् ॥ ४ ॥

अथ ज्ञानप्रकरणम् ५.

शिष्यवाक्यं–गीतायाम्।

श्लोक–किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम।
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते॥

भाषार्थ–हे गुरुजी महाराज! यह कृपाकर कहो कि जब पुरुषका कर्म और धर्मद्वारा अंतःकरण शुद्ध होजाताहै तब फिर क्या कर्तव्य है और ब्रह्मका स्वरूप कैसें जानाजाता है और गीतामेंभी जो अर्जुनने प्रश्न किया कि अधिभूत अध्यात्म अधिदैव इनके भेद वह कहो और यहभी कथन करो कि मायामें जीव कैसे फँसा है और कैसे मुक्त होताहै।

गुरुवाक्य।

श्लोक–ज्ञानं निःश्रेयसार्थाय पुरुषस्यात्मदर्शनम्।
यदाहुर्वर्णये तत्ते हृदयग्रंथिभेदनम्॥

भाषार्थ–हे शिष्य! सावधान हो सुनो कि यह संसार मिथ्या मायाका जाल है इससे निकलनेका उपाय केवल एक ज्ञान है जैसे हृदयमें जो मोहका आवरण तिसको छेदन करता है तब आत्मदर्शन होता है ऐसा शास्त्र कहते हैं।

१८—वीर्यरक्षा के अनूठे नियम

नियम पहिला—"पवित्र संकल्प।"

वक्तव्य—संकल्प उन विचारों का नाम है, जिनमें पूर्ण विश्वास भरा हो! परमात्मा विश्वास में होता है, यह बात हमें कभी न भूलनी चाहिये। यदि सोते समय मनुष्य ऐसा सोचकर सोवे कि आज "मैं चार बजे उठूँगा" तो निश्चय जानो कि उस मनुष्य की आँखें चार बजे अवश्य खुल जाती हैं। आलस्यवश यदि वह फिर से सो जाय तो दूसरी बात है। सामान्य विचारों में यदि वह शक्ति है, तो श्रद्धा या दृढ़ भावनापूर्ण विचारों से कितनी प्रचण्ड शक्ति होती होगी, इसका आपही अनुमान कर सकते हो।

एक मनुष्य गर्मी के दिनों में घाम से अत्यन्त व्याकुल हो गया था। दूरी पर उसे एक पेड़ दिखाई दिया। वैसे ही वह भागता हुआ वहाँ गया। पेड़ की शीतल छाया से उसे बहुत ही सुख उपजा। वह था "कल्प वृक्ष"। मनुष्य ने मन में सोचा, यदि यहाँ पीने के लिये ठंढा जल होता तो क्या ही आनन्द होता। ऐसा सोचते ही उसके वगल में सुन्दर शीतल झरना निर्माण हुआ। उस पर दृष्टि जाते ही वह बोल उठा—'अरे वाह! यहाँ तो झरना मौजूद है (थोड़ा पानी पीकर) अहह! क्या ही ठण्ढा और मीठा जल है! यदि इस समय पास में कुछ मेवा होता तो क्या ही आनन्द होता!' ऐसा सोचते ही वहाँ पर तत्काल मेवा से भरे हुए एक सुन्दर पात्र निर्माण हुआ! उसे देखते ही उसने सोचा 'ऐं—यह क्या चमत्कार है? मालूम होता है यहाँ पर कुछ शैतान का खेल

और संसारकी अनित्यता प्रतीत होगी सबसे वैराग्य होगा अभी तुम इन्हें प्रीतिसे सेवन करतेहो ऐसा श्रीरघुनाथजीसे वशिष्ठजीने कहा है पुनः कहते हैं।

विचारदीपिकायाम्।

श्लोक—इमे च दारात्मजसेवकादयः समाश्रितानामथ कर्म वा निजम्।
गतिस्तथैषां ननु का भविष्यति मयि प्रयाते परलोकमंततः॥

भाषार्थ—हेशिष्य! पुरुष कहता है कि मेरी स्त्री मेरा पुत्र मेरा भ्राता मेरा नौकर इन सबका मैं ही पालन करता हूँ मेरे विना ये भूखे मरेंगे यही अज्ञानता है क्योंकि मोह जन्म मरणका मूलहै जब तुम न थे तब तुम्हारे माता पिताका कौन पालन करता था इसीको विचारवान् समझते हैं कि उनकी पूर्वसंसिद्धि पालती है और अब न रहेंगे तौ भी इनका भाग्य इन्हें पालेगा ऐसा विचार सत्पुरुष ज्ञानवान्केही उत्पन्न होता है।

अध्यात्मरामायणे।

श्लोक—सुखस्य दुःखस्य न कोपि दाता परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।
अहं करोमीति वृथाभिमानः स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोकः॥

भाषार्थ—हे शिष्य देखो अध्यात्मरामायणमें लक्ष्मणप्रति श्रीरघुनाथजीने कहा है कि सुख और दुःख दोनोंका देनेवाला अपने पूर्वके संचित कर्मके भोग सो प्रारब्ध है इसीके अनुसार यह पुरुष भोगता है इसमें अज्ञानी कहता है कि अमुकसे लाभ और अमुकसे दुःख मिलता है यही उनकी अज्ञानताकी भ्रांति है ऐसेपुरुष पापरत मोहवश अनर्थद्वारा धन उपार्जन कर स्त्रीपुत्र का पालन करते हैं और आप नरकगामी होते हैं।

वाल्मीकीये।

श्लोक—पापैरनेकैस्तु यदर्थमादराद्वित्तं समानीय करोमि संव्ययम्॥
ते बांधवा वै मम दुःखभागिनः किं वा भविष्यंति गतस्य रौरवम्॥

भाषार्थ—हे पुरुषो जिन स्त्री पुत्र कुटुंबको अपना मान और अनेक प्रकारके पाप तथा छल पाखंड चोरी इत्यादिद्वारा धन ले तिन्हें पोषण करते हैं

बनाता है। मन ही मनुष्य को स्वर्ग में या नरक में बिठा देता है। स्वर्ग या नरक में जाने की कुञ्जी भगवान् ने हमारे ही हाथ में दे रक्खी है ? उसे सीधी या टेढ़ी घुमाना हमारे ही हाथ में है। मनुष्य की सुगति व दुर्गति उसके भले बुरे संकल्पों, विचारों पर ही सर्वथा निर्भर है। पापमय विचारों से वह पापात्मा और पुण्यमयी विचारों से वह निःसन्देह पुण्यात्मा बन जाता है। उच्च व पवित्र विचारों से, कितना हू पतित मनुष्य क्यों न हो वह भी उच्चाति-उच्च पवित्रात्मा बन सकता है। परन्तु भगवान् कहते हैं "उसके बुद्धि का निश्चय पूरा होना चाहिये।" अर्थात् ऐसा पुरुष फिर पाप कर्म नहीं कर सकता। "विश्वासो फलदायकः।"—यह भगवान् का वचन है। जितना विश्वास अधिक होगा उतना उसका फल भी अधिक ह ता है। महापुरुषों का विश्वास इतना प्रबल और अनन्य होता है कि वे पानी का घी और बालू की चीनी तक बना सकते हैं। ऐसा ही अनन्य विश्वास हमारा भी होना चाहिये। "संशयात्मा विनश्यति"—संशयी पुरुष का नाश होता है। अतः निःसन्देह भाव से संकल्प करने पर हमारा अवश्य ही उद्धार होगा, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है! सच पूछिये तो कुकल्पना ही शैतान है। अतः जिसको तरना हो उसे चाहिये कि हठपूर्वक कुबुद्धि को, कुविचारों को, त्याग कर सुबुद्धि को धारण करे और आज ही से, इसी समय से, पवित्र विचारों को शुरू कर दे! निःसन्देह अपरिमित कल्याण होगा। अतः निद्रा के पूर्व रोज पाव घण्टा अवश्य पवित्र संकल्प किया करो। इससे सब कुस्वप्नों का नाश होकर, तुम में एक अद्भुत दैवी शक्ति प्रकट होगी और तुम्हारे सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध होंगे। "पुरुष प्रयत्नस्य असाध्यं नास्ति"—

महाभारते।

श्लोक-यथाकपोतोऽन्नकणाभिवाञ्छयाशिचंविशन्नेतिदुरन्तबन्धनम्॥
कुटुम्बजाले विषयाशयाऽविशं तथा विमुच्येय कथं जगत्पते॥

भाषार्थ-एक जंगलमें एक वृक्षपर एक कबूतर एक कबूतरी रहतेथे वहीं उनके बच्चे थे कोई समयमें दोनों पक्षी कहीं चाराको गयेथे इतनेमें बधिकने चारा डाल उनके घोंसलेके बच्चे जालमें फांस लिये तबतक दोनों पक्षी आगये अपने बच्चोंको जालमें फँसे देख दुःखवश आप भी फँस प्राण गंवाये यही प्रकार अज्ञानीपुरुषोंके हैं। स्त्री पुत्र कुटुम्बके मोहमें पड जन्म मरणका क्लेश उठातेहैं।

श्रीमद्भागवते।

श्लोक-लोहदारुमयैः पाशैर्दृढबद्धो विमुच्यते।
स्त्रीधनादिषु संसक्तो मुच्यते न कदाचन॥

भाषार्थ-हे शिष्य! देखो जो पुरुष लोहेके फांसमें बँधा होताहै वह भी कभी छूट जाताहै परंतु स्त्री धन पुत्रके स्नेहमें फँसा वह विना महात्माओंके संगके नहीं छूटता है और ज्ञानद्वारा इनमें दोष देखे तब इनसे चित्त उपराम होताहै।

योगवाशिष्ठे स्त्रीलक्षणम्।

श्लोक-मांसपांचालिके यस्तुयंत्रोल्लोलेंगपंजरे।
स्नाय्वस्थिरक्तशालिन्यःस्त्रियः किमिव शोभनाः॥

भाषार्थ-हे पुरुष! जो तू कहताहै कि,स्त्री मेरी सो विचार कर तेरा क्या है स्नायु रुधिर हाड लार कफ इनपर चाम मढाहै अंगअंग में घिन भरे हैं पुनः प्रमाण।

विचारदीपिकायाम्।

श्लोक-इयं च मुक्तालिलसत्पयोधरा क्वणन्मणिव्रातनितंबमंडला।
विभाति रम्या ललनाऽविचारतो विचारदृष्ट्या तु कुमांसपुत्रिका॥

भाषार्थ-हे पुरुष! स्त्री नहीं नीकीहै जो आभूषणोंसे आच्छादितहै

इसी प्रकार हमारे कायिक, वाचिक, मानसिक शुभाशुभ कर्मों के फल भी हमें अवश्य ही मिलते हैं। मामूली बीज तो कोई उगते भी नहीं, परन्तु कर्मबीज एक भी उगे विना नहीं रहता; सभी फलरूप होते हैं। अतः प्रातःकाल उठते ही प्रथम अत्यन्त प्रेम से एक-दो, चार बढ़िया स्तोत्र वा भजन रोज़ कहो और फिर अलग पवित्र आसन पर बैठ कर, अत्यन्त दृढ़ विश्वास से नीचे दिये अनुसार पवित्र व उच्च संकल्प किया करो। देखो, संकल्प ही करते करते तुम में कैसा दैवी तेज प्रवेश करता है।

"संकल्प-प्रार्थना"

"वक्रतुण्ड महाकाय सूर्य कोटि-समप्रभ।
निर्विघ्नं कुरु मे देव! सर्वकार्येषु सर्वदा॥ १॥
"सर्वस्य बुद्धिरूपेण जनस्य हृदि संस्थिते।
स्वर्गाऽपवर्गदे देवि! नारायणि! नमोस्तुते॥ २॥
"गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवेनमः॥ ३॥

१—मन ही गणेश (गण-ईश अर्थात् इन्द्रिय समूह को हिलाने वाला स्वामी) है।

२—बुद्धि ही सर्वान्तर्व्याप्त ज्ञानदेवी सरस्वती है।

३—आत्मा ही परब्रह्म परमात्मा है। और,

४—आत्मा ही सत्वरज-तमात्मक त्रिमूर्ति श्रीदत्तात्रेयस्वरूप सद्गुरु है।

अर्थः—"हे वक्रतुण्ड (टेढ़ी शुण्ड वाले) ॐकार! आप विश्वोदर हो, विश्वव्यापी हो। अनन्त कोटि सूर्यतुल्य आपका प्रकाश है। आपको मेरा वार वार प्रणाम है। हे भगवान्! मेरे सम्पूर्ण

गर्भमें आया तब बंधेज कराया उत्पत्तिमें स्त्रीके प्राणनाश यदि हुए यहभी दुःख जब पैदा हुआ तब रोगगृहादिककी पीडा विवाह न हुआ परस्त्रीगामी यहभी दुःख विद्या न पढा मूर्ख रहा यहभी दुःख धन न पैदा करके घरका धन खोया यहभी दुःख चोरी कर कारागारमें गया यह दुःख मर गया यहभी महान दुःख इस लिये जो ज्ञानी हैं वे पुत्रके अर्थ उपाय नहीं करते उत्पन्न हुआ तो विशेष मोह नहीं करते पुनः प्रमाण।

ज्ञानचिंतामणौ।

श्लोक—सूनुर्मयायं परिपूज्य देवता लब्धः प्रयत्नेन च वर्धितोऽधुना।
मामेवमूढः परिशिक्षितः स्त्रिया द्वेष्टीत्यहो भाग्यविपर्ययो हि मे॥

भाषार्थ—जब पुत्र न था तब नानाप्रकारसे देवता पूजे जब पुत्र हुआ तब द्रव्य लुटाया और पढाय गुनसिखाय बडा कर दिया जब विवाह हुआ स्त्री आई कमाने लगे तब आधा घर तक बँटाय अलग हो रहे कोई हितकी बात कहो तो बदले लडने लगैं और माता पिताको कटु वाक्य कहैं सपूत हुआ तो कुशल नहीं कुपूत हुआ तौ कुशल नहीं—" दोहा—जिमि माठा अपने गुनन, डारत दूधविगार। प्रियादास त्यों कुपुत सुत, डारत कुलै उजार॥" और भी पुराणोंसे धुंधकारी कंस दुर्योधन आदिकी करनी विदितहै इस लिये पुत्रमेंभी प्रीति कम होनी चाहिये।

धनके दोष वायुपुराणमें।

श्लोक—अर्थानामर्जने क्लेशस्तथैव परिपालने।
नष्टे दुःखं व्यये दुःखं धिगर्थान् क्लेशकारिणः॥

भाषार्थ—धन जब न पैदा हुआ तब देश विदेश नानाप्रकारके क्लेश सहि पैदा किया फिर ताकी रक्षामें दुःख चोरोंसे भय शत्रुसे भय जो नाश हुआ तो जन्मपर्यंत चिंता दुःखसे व्याप्त पुनः।

पंचदशी।

श्लोक—अनेकयत्नैः समुपार्ज्य सर्वतः सदातिरक्षाक्षतिदुःखदं धनम्।
व्ययं कुकार्येषु करोम्यहो पदं स्वकं स्वकीयेन करेण हन्यते॥

४—ईश्वर परम वीर्यवान्, पूर्ण भाग्यवान् व असीम सामर्थ्य-वान् है। मेरा भी स्वरूप वही है; मैं भी परम वीर्यवान्, पूर्ण भाग्यवान् व असीम सामर्थ्यवान् हूँ! ॐ!

५—ईश्वर पूर्ण निष्काम, निर्विषय व निर्विकारी है; ईश्वर मुझ में है; मैं भी पूर्ण निष्काम, निर्विषय व निर्विकारी हूँ। ॐ!

आवश्यक सूचना:—"मैं" शब्द "ईश्वर" बोधक है, न कि शरीर बोधक। क्योंकि यह साढ़े तीन हाथ का अभिमानी चोला मृत्यु के बाद ज्यों का त्यों पड़ा रहने पर भी "मैं" नहीं कह सकता। अतः "मैं" यह सर्वव्यापी' शब्द केवल ईश्वर बोधक ही समझना चाहिये; न कि देह का बोधक! देहाभिमान से अधःपतन होगा यह बात सदा ध्यान में रखना चाहिये।

६—मैं ईश्वर हूँ, मेरी शक्ति अनन्त है। मैं जो चाहूँ सो कर सकता हूँ। ॐ!

७—मैं पुरुष हूँ; प्रकृति मेरी स्त्री है; अतः प्रकृति को मेरी आज्ञा अक्षर अक्षर माननी होगी। ॐ!

८—अय प्रकृति देवि! मन तथा इन्द्रियों को विषय का स्मरण न करने दो। उन्हें विषय की ओर न जाने दो। उन्हें विषय से पीछे हटाओ! उन्हें विषय से खूब सम्हालो। हरगिज उनका नाश न होने दो। उन्हें विवेक से शान्त व सुखी करो। देखो इस आज्ञा का ठीक ठीक पालन करो। ॐ!

द्वितीय सूचना:—अब नीचे के संकल्प हृदय की ओर देखते हुये करो; मानों परमात्मा हृदय में ही बैठे हुए हैं और हम "भक्त" भाव से, परमात्मा से बातचीत कर रहे हैं। इन सङ्कल्पों से शरीर

भाषार्थ—जिस मनुष्यदेहकी देवता भी इच्छा करते हैं उसे प्राप्त हो भगवत्‌के दर्शन होते हैं सोई चिंतामणिवत् है इसको काचरूपी विषयसे बदलता है यह अज्ञानता त्याग ज्ञानका संपादन कर यह नर तन दुर्लभ है "दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभंगुरः" इत्यादि अर्थ इसप्रमाण से भी सिद्धहै कि मनुष्यका देह दुर्लभहै और अनित्यहै एक क्षण आधी घडीमें नाश हो जाता है सो अनेकयोनियोंमें भ्रमते २ पश्चात् मनुष्यका तन मिलताहै तहां गर्भनिवाससे क्लेश भोगताहै ॥

अथर्वणि गर्भोपनिषदि ।

श्लोक—यद्गर्भोपनिषद्वेद्यं गर्भस्य स्वात्मबोधकम् ।
शरीरापाह्नवात्सिद्धं स्वमात्रं कलये हरिम् ॥
पञ्चात्मकं पञ्चसु वर्तमानं षडाश्रयं षड्गुणयोगयुक्तम् ।
तं सप्तधातुं त्रिमलं द्वियोनिं चतुर्विधाहारमयं शरीरम् ॥

भवति पंचात्मकः कस्मात् पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशमित्यस्मिन् पंचात्मके शरीरे का पृथिवी का आपः किं तेजः को वायुः किमाकाशमित्यस्मिन्पंचात्मके शरीरे तत्र यत्कठिनं सा पृथिवी यद् द्रवं ता आपः यदुष्णं तत्तेजः यत्सञ्चरति स वायुः यत्सुषिरं तदाकाशमित्युच्यते तत्र पृथिवीधारणे आपः पिंडीकरणे तेजः प्रकाशने वायुर्व्यूहने आकाशमवकाशप्रदाने पृथक् श्रोत्रे शब्दोपलब्धौ त्वक् स्पर्शे चक्षुषी रूपे जिह्वा रसने नासिका घ्राणे उपस्थ आनंदने अपानमुत्सर्गे बुद्ध्याबुध्यति मनसा संकल्पयति वाचा वदति । षडाश्रयमिति कस्मात् । मधुराम्ललवणातिक्तकटुकषायरसान् विन्दतीति । षड्जऋषभगांधारमध्यमपंचमधैवतनिषादाश्चेतीष्टानिष्टशब्दसंज्ञाः प्रणिधानादशविधा भवन्ति ॥ १ ॥ शुक्लो रक्तः कृष्णो धूम्रः पीतः कपिलः पांडुर इति । सप्तधातुकमिति

"अब करुणा कर कीजिए सोई,
जा विधि मोर परम हित होई ॥"

त्राहिमाम् ! त्राहिमाम् !! त्राहिमाम् !!!

इस प्रकार रोज प्रातःकाल, सायंकाल, और भोजन के समय ऐसे केवल तीन ही बार यदि विश्वास और दृढ़ता के साथ हम संकल्प करेंगे तो अपरम्पार कल्याण होगा। महापुरुष कहते हैं:—

"स यः संकल्पब्रह्मेत्युपास्ते क्लृप्तान्वै सः।
लोकान् ध्रुवान् ध्रुव प्रतिष्ठान् प्रतिष्ठिते ॥१॥

"जो इस संकलपरूपी ब्रह्म की नित्यप्रति उपासना करता है, वह निर्भय होकर इस लोक व परलोक में ईश्वर के तुल्य पूजनीय बन जाता है और उसका सर्वत्र सन्मान होता है।"

"सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखमाप्नुयात्" ॥१॥

ॐ शान्तिःपुष्टिस्तुष्टिश्चास्तु।
शुभं भवतु।
"तथास्तु"

"पवित्र-मातृभाव-दृष्टि"

नियम दूसरा :—

वक्तव्य—वीर्य-रक्षा के लिए हमें हनुमानजी को मुख्य आदर्श मान उनकी तरह प्रत्येक स्त्री की ओर, यदि देखना ही हो तो "मातृवत् परदारेषु" अर्थात "पर तिय मात समान" इसी पवित्र

अहो दुःखोदधौ मग्नो न पश्यामि प्रतिक्रियाम् ॥ यदि योन्याः प्रमुच्येहं तंप्रपद्ये महेश्वरम् । अशुभक्षयकर्तारं फलमुक्तिप्रदायकम् ॥ इति गर्भोपनिषत्सारांशः ॥

भाषार्थ—हे शिष्य ! अब तुझको गर्भ उपनिषद् कहताहूं जिस गर्भकी उत्पत्ति सुने वैराग्यद्वारा आत्मबोध होता है । आत्मबोधसे परमात्माकी प्राप्ति होती है । पंचभूतोंसे शरीरकी उत्पत्ति होतीहै वह शरीर स्थूल होताहै पृथ्वी आप् तेज वायु आकाश इनहीसे पांचों ज्ञानेंद्रिय होती हैं नाक, कान, नेत्र, जिह्वा और त्वचा इनकी उत्पत्ति सृष्टिकी उत्पत्तिमें आगे कहेंगे। इस शरीरका छः रसोंसे पोषण होताहै और चार प्रकारके भोजन हैं । चोष्य यानें ऊखका चूसना लेह्य आम्रादिक चाटना भोज्य रोटी दाल भात इत्यादिका । चव्य चबेना चनादिक तिनमें छः प्रकारके रसहैं । मधुर मीठा अम्ल खट्टा लवण खारी तिक्त कटु कषाय इनको जठराग्नि पाचन करता है तिससे सात प्रकारकी धातु पैदा होती हैं शुक्लरक्तकृष्णधूम्रपीत कपिलपांडुररुधिरमेदलारकफशुक्रहाड इन सातोंका सार कामदेवहै सो पुरुष के हृदयमें स्त्रीके रज होती है जब स्त्री रजोधर्म याने रजस्वला हुई तब कामातुर होती है तब पतिके संग पाचवें रोज रमण करती है तब उसके गर्भमें जो वीर्य रहे वह एकरात्रिमें कलल बुद्बुद सात रोजमें पिंड पन्द्रह दिनमें पिंड पुरुषका पुष्ट मासमें दो मासमें शिर तीसरे मासमें दोनों पाँव चौथे मासमें गुल्फ कटि उदर ये तीन उत्पन्न होते हैं पँचयें मासमें पीठ होवैहै छठयें मासमें मुख नासिका नेत्र कान होवें । सप्तम मासमें चेतनता प्रगट होवै है । अष्टम मासमें सर्वलक्षणों करके सम्पूर्ण होवै है । नवें मासमें सर्वज्ञान करके दुःखसुखका अनुभव कर अपने पूर्वकर्मों का स्मरण करता है अत्यन्त वैराग्यको प्राप्त होता है कहता है कि हे ईश्वर! मैं अपने अनिष्ट कर्मका फल पाचुका हजारों योनियोंमें हजारों गर्भमें नाना क्लेश सहे हजारों

सर्वथा त्याग दो। क्योंकि वैसा करना स्त्री-पुरुष दोनों के लिये हानिकर व नाशकर है। भक्तदास वामन कहते हैं:—

यद्यपि मात भगिनी सुता तऊ न बैठे पास।
प्रबला हैं ये इन्द्रियाँ करो न तुम विश्वास॥

श्री लक्ष्मणजी की तरह प्रत्येक स्त्री को स्त्री जगज्जननी जानकीजी का ही रूप समझ कर, मातृभाव से उसे मन ही मन प्रणाम करो और "सिया राममय सब जग जानी"—ऐसा पवित्र चिन्तन करने लगो।

स्त्रियों को "पर नर तात समान" ऐसी शुद्धदृष्टि रखनी चाहिये निस्सन्देह उद्धार होगा। मातृ-चिन्तन या ईश्वर-चिन्तन यह विषयचिन्तन को मिटाने की एक बड़ी ही उत्कृष्ट दवा है। आप भी इसका सेवन कीजिये और अपना उद्धार कर लीजिये। जब तक हमारी दृष्टि बन्द है, हम निद्रित हैं, तब तक बगल में पड़े हुये महा विषधर काले सांप से भी हम नहीं डर सकते; पूर्ण निर्भय बने रहते हैं। परन्तु दृष्टि पड़ते ही उसका कितना भयंकर परिणाम होता है यह तत्काल स्पष्ट दिखाई देता है। वैसे ही जब तक किसी स्त्री की ओर हम पलक उठा के नहीं देखेंगे, उसका मुँह काला है या गोरा है ऐसा नहीं जानेंगे, तब तक यदि प्रत्यक्ष हमारे सामने उर्वशी भी आ के खड़ी क्यों न हो जावे तो वह भी हमें एक रत्ती भर डिगा नहीं सकती; हमारे चित्त को विचलित नहीं कर सकती। परन्तु दृष्टि जाते ही नष्टदृष्टि पतिंगे की तरह, उस मनुष्य के बाहर-भीतर आग लग जाती है। श्रीमान शंकराचार्य कहते हैं—

शंकराचार्योक्तलक्ष्मीनरसिंहस्तोत्रे ।

श्लोक—संसारवृक्षमघबीजमनंतकर्मशाखाशतं करणपत्रमनंगपुष्पम् ॥
आरुह्य दुःखफलतः पतितो दयालुलक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलंबम् ॥

भावार्थ— हे शिष्य ! संसाररूपीवृक्ष ताकी उत्पत्ति पाप बीज, अनंतकर्म सोई शाखा, इच्छा पत्र, कामदेव फल, तामें जन्ममरणरूपी दुःख फल, ताके आसरे याने मायाकी छायामें कबतक ठहरेगा ताते ज्ञानद्वारा इनसे बच।

विचारदीपिकायां—शिष्यवाक्यम् ।

श्लोक—इदं जगच्चित्रचरित्रचित्रितं विनिर्मितं केन कथं कुतस्तथा॥
मृषाऽमृषा वापि ततो विलक्षणं भवेद्यथाऽनादि किमादिमान्मुने ॥

भावार्थ—हे गुरुजी महाराज ! अब यह कृपा कर समुझायके कहो कि यह जगत् (संसार) चमत्कारी चित्रवत् है जैसे कागजपरके चित्रकी कोई नित्यता नहीं ऐसे इसकी भी नहीं जिस्में तीन लोक चौदह भुवन सप्तद्वीप नौ खंड हैं जिनमें मनुष्य पक्षी पशु राक्षस देव किन्नर इत्यादि रहते हैं ऐसे संसारको किसने रचा किस हेतु से रचा यह आदि है या अनादि है इसका नियंता है या नहीं सो कहो ।

गुरुवाक्यमृग्वेदे ऐतरेयोपनिषदि ।

श्लोक—आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत् किंचन
मिषत् स ईक्षत लोकान्नुसृजा ॥ इति

भावार्थ—हे शिष्य ! पहिले एक परमात्माही एक केवल था फिर उसकी इच्छा हुई कि मैं बहुत होऊं तिसके प्रमाणमें ।

श्रुति "एकोहं बहु स्याम् " इति

भा०—तब उसकी ऐसी उच्छा होतेही माया प्रगट भई वह माया जगतका मूलकारण है प्रमाण ।

कृष्णयजुर्वेदकी श्वेताश्वतरोपनिषद्में ।

श्लोक—मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ।

रहता है, यह अनुभवसिद्ध बात है। आप भी इसका अवश्य अनुभव कीजिये, निस्सीम कल्याण होगा।

एक वार शेष जी बीमार पड़े। वहुत दवा की परन्तु आराम नहीं हुआ। अन्त में धन्वन्तरी ने शेष जी की आँखें बाँधी, और फिर दवा दी। तब बहुत जल्द दुरुस्त हो गये। मित्रो! शेष जी के नेत्र क्यों बांधे गये, जानते हो? सुनो, जब तक शेष जी के नेत्र खुले थे तब तक उनके नेत्रों से निकलने वाली विषमयी ज्वालाओं से सब औषधि बिलकुल विष बन जाती थी; अमृतवल्ली भी विषवल्ली बन जाती थी। नेत्र जब बांधे गये तभी दवा दवा बनी रही और वे चंगे हो गये। इसी प्रकार जब तक हम अपनी विषयपूर्ण पापी दृष्टि को बन्द अर्थात् नीची नहीं करेंगे तब तक सात जन्म में हमारा सुधार नहीं हो सकता। अतः चंचल चित्त वालों को पर-स्त्री की ओर देखना एकदम प्रतिज्ञापूर्वक त्याग ही देना चाहिये। जो प्रण करके इसके अनुसार चलेगा, उसको अवश्य ही मेवा मिलेगा। उसका अवश्य ही उद्धार होगा और जो मोह वश पर-स्त्री की तरफ़ ताकेगा उसको उसका ही निर्मित पाप-रूपी पिशाच अवश्य ही खा डालेगा। विषयी दृष्टि को बन्द करने से—किसी स्त्री की ओर बिलकुल न ताकने से—पापी से पापी मनुष्य भी बहुत जल्द सुधर सकता है। नीची अर्थात् नम्र दृष्टि ही से मनुष्य ऊँचा से ऊँचा बन सकता है। जो गीध या ऊँट की तरह किसी स्त्री की ओर गर्दन उठा के वा घुमा के ताकेगा वह फ़ौरन नरककुंड में जा गिरेगा। नीच पुरुष सती स्त्रियों की ओर भी पाप की ही दृष्टि से देखा करते हैं। भला ऐसे नारकी पुरुषों का कैसे भला हो सकता है? भक्तदास वामन कहते हैं:—

भाषार्थ–हे गुरुजी महाराज ! जो तुमने श्रुति और गीताके कई प्रमाण कहे कि भगवत्का कुछ प्रयोजन सृष्टिके रचनेमें नहीं । तो विना प्रयोजन कोई पुरुष किसी कार्यका आरम्भ नहीं करता तो वे तो परमेश्वर हैं यह समुझायकर कहो ।

गुरुवाक्यं ब्रह्मांडपुराणे ।

श्लोक–सदाप्तकामस्य तु नात्महेतवे न चेतरस्यापि न चाप्यहेतुका ॥
जगत्क्रिया क्रीडनमेव केवलं विभोर्वदन्तीह तु वेदवादिनः ॥

भाषार्थ–हे शिष्य ! ईश्वर परिपूर्णहैं उनके कोई कामना नहीं ईश्वर अकामभी हैं परन्तु यह सृष्टिलीला उनके क्रीडाकरनेके अर्थ है । दृष्टांत जैसे राजा अपने खेलने याने कौतुकके अर्थ विचित्र बाग उनमें महालय अर्थात् वडे मकान पर्वतोंपर बनवाते हैं । ऐसे भगवत्की इच्छा लीला विहारकी होती है तब जगत्को इच्छासे प्रगट करता है उसमें नाना लीलाएँ करे फिर निजस्वरूपपर लक्ष्य कर शांत होजाता है कि जैसे पहिले सत्यरूप था तहां प्रमाण ।

सामवेदे छान्दोग्योपनिषदि ।

श्लोक–"सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम् ।"

भाषार्थ–देखो उपनिषदमें भी कहाहै कि एक पहले ब्रह्मही अद्वितीय इसलिये परमात्मासेही जगत् उत्पन्न हुआहै वह जगत्की उत्पत्ति सुनो ।

श्रीमद्भागवते तृतीये स्कं० ।

श्लोक–महत्तत्त्वाद्विकुर्वाणाद्भगवद्वीर्यसंभवात् ।
क्रियाशक्तिरहंकारस्त्रिविधः समपद्यत ॥

भाषार्थ–भगवतकी कृपावीर्यसे महतत्त्व सो ता शक्तिसे अहंकार तीन प्रकारका है सो कहेहैं ।

श्लोक–वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्च यतो भवः ।
मनसश्चेन्द्रियाणां च भूतानां महतामपि ॥

सच्चा पालन कर सकोगे और कामरूपी मेघनाद को निश्चयपूर्वक मार सकोगे। सारांश यह कि किसी स्त्री की ओर न देखना ही ब्रह्मचर्य-रक्षा का परम श्रेष्ठ रहस्य है—उपाय है।

"सादी रहन-सहन"

नियम तीसरा :—

वक्तव्य:—ब्रह्मचर्य-रक्षा के लिये हमें अपना जीवनक्रम "Simple living and high thinking" यानी "सादा वर्ताव और ऊँचा ख्याल" इस सदुपदेश के अनुसार अत्यन्त सीधा-सादा प्रकार का रखना होगा; क्योंकि सादापन ही बड़प्पन का चिह्न है, बल्कि रहस्य है। Simpleness is itself greatness संसार में आज तक जितने महापुरुष हुए हैं वे सब सादी ही रहन-सहन से हुए हैं। अधिक सुख-भोग की सामग्री से घिरे रहना मानों अपने को व्यभिचारी ही बनाना है। शृङ्गार से कामदेव जागृत होता है। विलासप्रियता से तन, मन, धन, तीनों बरबाद हो जाते हैं। ऐश-आराम का चसका ही मनुष्य को धूल में मिला देता है। आराम-तलब मनुष्य को कामरिपु पटक पटक कर मारता है। यही कारण है कि ग़रीबों से धनी लोग विशेष कामी और विशेष दुःखी रहते हैं। नख़रेबाज़ी से मनुष्य आतिशबाज़ी की तरह बिलकुल जल उठता है। नक़्क़ाशीदार लोटा या ग़िलास में जैसे सर्वत्र मैल भरा रहता है, उसी प्रकार नख़रेबाज स्त्री-पुरुषों में भी काम, क्रोध, अहंकारादि मैल विशेष भरा रहता है। सत्पुरुष कहते हैं :—

तामसलक्षण।

श्लोक—तामसाच्च विकुर्वाणाद्भगवद्वीर्य्यचोदितात्।
शब्दमात्रमभूत्तस्मान्नभः श्रोत्रं च शब्दगम्॥

भाषार्थ—भगवत्के वीर्य्यसे प्रेरित तामस अहंकार विकारको प्राप्त हुवा उससे शब्दमात्र होता भया ताका रूप नाम याने आकाश तासे विज्ञानइन्द्रियश्रोत्र कान शब्दसे हुये।

आकाशलक्षण।

श्लोक—अर्थाश्रयत्वं शब्दस्य द्रष्टुर्लिंगत्वमेव च।
तन्मात्रत्वं च नभसो लक्षणं कवयो विदुः॥

भाषार्थ—शब्दके अर्थको जाननों देखवेवारेको चिह्न मात्रको ज्ञान ताकी मात्रा जाननों ये आकाशलक्षण हैं।

आकाशवृत्तिलक्षण।

श्लोक—भूतानां छिद्रदातृत्वं बहिरंतरमेव च।
प्राणेंद्रियात्मधिष्ण्यत्वं नभसो वृत्तिलक्षणम्॥

भाषार्थ—जब जीवमात्रमें आकाशछिद्र बाहरभीतरता जामें पाई जाय प्राणेंद्रिय आत्मा इनते इनमें स्थान रखनो ये आकाशके लक्षण हैं।

श्लोक—नभसः शब्दतन्मात्रात्कालगत्या विकुर्वतः।
स्पर्शोऽभवत्ततो वायुस्त्वक्स्पर्शस्य च संग्रहः॥

भाषार्थ—शब्दमात्रावाले आकाशके विकारी होते उससे स्पर्श गुणवाला वायु भया जासे त्वचा याने (खाल) भई जासे स्पर्शका ज्ञान होता है वायुगुण सुनो।

वायुलक्षण।

श्लोक—मृदुत्वं कठिनत्वं च शैत्यमुष्णत्वमेव च।
एतत्स्पर्शस्य स्पर्शत्वं तन्मात्रत्वं नभस्वतः॥

भाषार्थ—कोमल कठिनतायुक्त शीतलता ग्रीष्मता स्पर्शगुण ये वायुपवनके तन्मात्राके लक्षणहैं।

जीवन है और सजावट ही नाश है, यह तत्व पूर्णरीति से ध्यान में रक्खो।

"सत्संगति"

नियम चौथा :—

सत्संगत्वे निःसंगत्वं निःसङ्गत्वे निर्मोहत्वम्।
निर्मोहत्वे निश्चलतत्वं निश्चलतत्वे जीवन्मुक्तः॥

—श्रीमच्छङ्कराचार्य।

"सत्सङ्ग से निःसङ्ग (Non-attachment) की प्राप्ति होती है; निःसङ्ग से निर्मोहत्व अर्थात् विषय से अप्रीति बढ़ती है; निर्मोह से सत्य का पूरा ज्ञान व निश्चय होता है और सत्तत्व के निश्चल ज्ञान से मनुष्य जीवन्मुक्त होता है अर्थात् इस संसार से तर जाता है।"

वक्तव्यः—संसार में 'आत्मोन्नति' के लिये जितने साधन मौजद हैं उन सब में सत्संग सब से श्रेष्ठ उपाय है। 'सत्संग' यह शब्द अत्यन्त महत्व का है। सत्संग में संसार की तमाम उन्नतिकर बातों का समावेश होता है। जैसे पवित्र व ऊँचे विचार करना, पवित्र व मीठे वचन बोलना, पवित्र वचन सुनना, पवित्र भोजन करना, पवित्र स्वदेशी कपड़े पहनना आदि अनन्त बातों का समावेश होता है और 'कुसंग' में संसार की तमाम स्वपरनाशकारी बातों का समावेश होता है। सत्संग से मनुष्य देवता बनता है और कुसंग से मनुष्य राक्षस बन जाता है। भक्त तुलसीदास जी पूछते हैं "को न कुसंगति पाय नसाई ?" सच है, कुसंग से आजतक

भाषार्थ-कषाय मधुर तिक्त कटु अम्ल ये अनेक विकार भौतिकसे एकरसके हैं ये रसनागुणहैं याने जीभके गुणहैं ।

जलके लक्षण ।

श्लोक-क्लेदनं पिंडनं तृप्तिः प्राणानाप्यायनोंदनम् ।
तापापनोदो भूयस्त्वमंभसो वृत्तयस्त्विमाः ॥

भाषार्थ-गीलापन गोलाबंधना तृप्ति जीवन प्यासमिटावना कोमल करना ताप दूरकरना जल विकार पसीनाद्वारा निकालना (श्रुति) "आपोमयः प्राणः" । इति । ता जलसे गंधवाली पृथ्वी भई तासे घ्राण (नासिकेंद्रिय)

श्लोक-रसमात्राद्विकुर्वाणादंभसो दैवचोदितात् ।
गन्धमात्रमभूत्तस्मात्पृथ्वी घ्राणस्तु गंधगः ॥

भाषार्थ-रसगुणवाला दैवप्रेरित जल जब विकारको प्राप्त भया तासे पृथ्वी भई जासे गंधप्राप्त तासे विज्ञान घ्राण इंद्रिय (नाक) भई जासे गंध इत्यादिकका भान होवै है ।

श्लोक-करंभपूतिसौराभ्यशांतात्युग्रादिभिः पृथक् ॥
द्रव्यावयववैषम्या द्गंधएको विभिद्यते । इति ।

भाषार्थ-मिलीगंध सुगंध शांत उग्रआदि द्रव्यके अवयवोंके विषमता पृथक् एकगंधको प्राप्त होतीहै ।

श्लोक-भावनं ब्रह्मणः स्थानं धारणं तद्विशेषणम् ।
सर्वसत्त्वगुणाद्भेदः पृथवीवृत्तिलक्षणम् ॥

भाषार्थ-प्रतिमादिक भगवद्रूपमें ब्रह्मभावना स्थानधारण सर्वजीवमात्रके गुणके भेद करना ये पृथ्वीके लक्षणहैं ।

श्लोक-नभोगुणविशेषोऽर्थो यस्य तच्छ्रोत्रमुच्यते ।
वायोर्गुणविशेषोऽर्थो यस्य तत्स्पर्शनं विदुः ॥

भाषार्थ-आकाशका असाधारण गुण शब्द जिसका विषय श्रोत्र (कान) इंद्रिय कहलातीहै वायुके असाधारण गुण स्पर्श त्वचा(चर्म)इंन्द्रिय कहलातीहै।

कर ताता, दुष्ट संग जनि देहि विधाता।" अतः कल्याण चाहने वालों को कुसंग को एक दम प्रतिज्ञापूर्वक त्याग देना चाहिए और सत्सङ्ग को प्रयत्नपूर्वक प्राप्त करना चाहिये। कुमित्रों से मित्ररहित रहना ही लाख गुना श्रेष्ठ है; क्योंकि कुसंग से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों मटियामेट हो जाते हैं और अन्त में महान् अधोगति होती है। परन्तु सत्संग से चारों पुरुषार्थ अनायास सध जाते हैं। याद रक्खो, राजपाट, गज, वाजि, धन, स्त्री, पुत्रादि सब कुछ मिलेंगे, परन्तु सत्सङ्ग मिलना परम दुर्लभ है। "बिनु सतसङ्ग विवेक न होई, राम कृपा बिनु सुलभ न सोई।"—यह गोस्वामी जी का वचन अक्षर अक्षर सत्य है। मोक्ष के सब साधन एक तरफ और सत्सङ्ग एक तरफ दोनों में सत्सङ्ग का ही दर्जा बहुत ऊँचा है।

"तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला इक अंग।
तुलै न ताही सकल मिलि, जो सुख लव सत्संग॥

सच है, "शठ सुधरहिं सतसंगति पाई" कैसे? तो जैसे "पारस परसि कुधातु सुहाई।" यह नितान्त सत्य है कि "सम्पूर्ण दुराचार और व्यभिचार की जड़ एक मात्र कुसंगति ही है।" अतः ब्रह्मचारियों को तथा अभ्युदयेच्छुओं को चाहिये कि कभी भी जीभ से बुरी बात न कहें, कान से बुरी बात न सुनें (जैसे कजली होली की गालियां व भद्दे भद्दे गीत आदि), आंख से बुरी चीज न देखें (जैसे नाटक, तमाशा, सिनेमा, नाचवाली रामलीला, भद्दी चीज इत्यादि), पैर से बुरी जगह न जायें, हाथ से बुरी चीज न छुवें और मन से विषय-चिन्तन हरगिज न करें। बल्कि कुभावों को

श्लोक-पृथ्वी जले संनिमग्ना जलं मग्नं च तेजसि।
लीनं वायौ तथा तेजो व्योम्नि वातो लयं ययौ ॥

भाषार्थ--पृथ्वी जलमें जल अग्निमें अग्नि वायुमें वायु आकाशमें आकाश अविद्या याने मायामें सो माया भगवत्की इच्छामें सो हे पुरुष! जो तू कहता है कि, मेरा मैं सो इनमें याने ऊपर कहेभये इनमें तू कौन है यह जो विचारे सोई ज्ञानका रूप शुद्ध सत्त्वस्वरूप है।

श्लोक-यः सर्वगः सर्वविदक्षरः प्रभुर्मायाधिपस्तंतुरिवोर्णनाभितः ॥
तस्मादनिर्वाच्यमिदं प्रजायते वेगात्मना चेदमनाद्युदाहृतम् ॥

भाषार्थ-हे शिष्य!जो तूने प्रश्नकिया कि यह जगत् किसने उत्पन्न किया सत्य है या मिथ्या ताका प्रतिपादन ऊपर कह आये यह माया जगत्को ईश्वरकी इच्छासे प्रगट करती भई तासे जगत्में परमात्मा बाहर भीतर व्याप्त है

श्रुति"आकाशवत्सर्वगतश्चनित्यः" इति।

अर्थ--आकाशवत् सर्वजगत्में परमात्मा व्याप्त है तथा सर्वजगत्का उपादान कारण है नित्यहै यह जगत् हस्तामलकवत् ज्ञानपरिपूर्ण पुनः सो श्रुति प्रति पादन करे हैं।

श्रुति"यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः"। इति।

अर्थ-जो परमात्मा सर्वज्ञ सबको जानताहै याने ब्रह्मासे चींटीपर्यंत सामान्यविशेषका नियंता सो परमात्मा जगत्का कारणहै हे शिष्य ! यह तो जगत् उत्पत्ति और इसका कारण परमात्माही एक अवतरा कहना कि जगत् सत्य है या मिथ्या है या तिसका मल माया सत् है या असत् है।

श्रुति "तस्मादनिर्वाच्यमिदं प्रजायते"। इति।

अर्थ-हे शिष्य! तिस परमात्मासे यह जगत् अनिर्वचनीय अर्थात् प्रत्यक्ष प्रतीत होनेसे मिथ्याभी नहीं कहा जाता और ज्ञान कालमें अभावसे सत्यता भी नहीं कही जासकती याने अनिर्वचनीय सोई विद्यारण्यस्वामी कहे हैं।

"सद्ग्रन्थावलोकन"

नियम पाँचवाँ :—

वक्तव्य:—जहां सन्मित्र व सज्जन-संगति दुर्लभ हो वहां सद्ग्रन्थ-रूपी सज्जनों और मित्रों की संगति करना चाहिए। सद्ग्रन्थों द्वारा हम संसार के एक से एक महात्मा की संगति रात-दिन कर सकते हैं और उनसे जब चाहें तब तथा जितने मरतबे चाहें उतने मरतबे वार्तालाप कर सकते हैं और अपना 'यथेष्ट' समाधान कर सकते हैं। "सद्ग्रन्थ इस लोक के चिन्तामणि हैं। सद्ग्रन्थों के पठन-पाठन से सब कुचिन्तायें मिट जाती हैं, संशय-पिशाच भाग जाते हैं और मन में सद्भाव जागृत होकर परम शांति प्राप्त होती है। ज्ञानाग्नि से मनुष्य का सब पाप जल जाता है और मनुष्य पापात्मा से पुण्यात्मा और व्यभिचारी से ब्रह्मचारी बन जाता है। ज्ञानानन्द के सामने विषयानन्द फीका पड़ जाता है। बिना सिद्धान्त-वाक्यों के श्रवण किये किसी का आचरण कदापि शुद्ध नहीं हो सकता। श्रवण की महिमा अपरम्पार है। बिना देखे और सुने किसी का उद्धार आज तक न हुआ है, न होगा।

अतः हमें रोज़ प्रातःकाल और सायंकाल किसी पवित्र ग्रन्थ का पवित्रता और एकाग्रतापूर्वक, शुद्ध जगह पर बैठ कर, थोड़ा ही नियमित पाठ करने का नियम बांध लेना चाहिये। पाठ को शान्ति और प्रसन्नता-पूर्वक पूरा किये बिना अन्न ग्रहण नहीं करेंगे—ऐसा एक निश्चय कर लेना चाहिये। इस प्रकार निश्चय कर लेने से मनुष्य के भीतर एक अद्भुत दैवी शक्ति जागृत होती है, जो कि उसे उन्नति के शिखर पर पहुँचा देती है।

है पुनः इंद्रिय जो पांच ज्ञानेंद्रिय यथा नाक कान आंख जीभ चर्म पांच कर्म इंद्रिय यथा हाथ इनसे लेना देना पांवोंसे चलना गुदासे मलका त्याग लिंगसे पुत्रोत्पादन मूत्रत्याग वाक्से बोलना ये सब जड हैं इनका कारण पंचमहाभूत अनित्यहैं तौ जिसका कारण अनित्य तौ उत्पत्ति ताकी कब सत्य प्रतीत होवे इसका विषय पूर्वमें सृष्टि उत्पत्तिमें कहआये हैं जो कहो प्राण १ अपान २ उदान ३ समान ४ व्यान ५ नाग ६ कूर्म ७ कृकल ८ देवदत्त ९ धनंजय १० ये दशप्रकारके वायु शरीरविषे स्थित सो जड इनका विषय खाना पीना निद्रा सो भी पंचमहाभूतके रजो अंशसे होते हैं ताका प्रमाण—

यजुर्वेदे कठोपनिषदि ।

श्लोक—न प्राणेनापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन ।
इतरेण हि जीवंति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ । इति ॥

भाषार्थ—इसका भी तात्पर्य्य ऊपर कहे भये ही की तरह समझो यह जो कहआये सो मृतक पुरुष होता तब ये प्राण इन्द्रिय चेतनता नहीं पासकते ताते ये सर्वका कारण पंचभूत सो तीनगुणसे उत्पत्ति तासे इनका प्रेरक परमात्मा इनते जदाहै सो ताका प्रमाण सुन ।

गीतायाम् ।

श्लोक—त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।

अर्थ—सत्त्व रजस्तम इति याने सत्त्वगुण रजोगुण और तमोगुण इन तीनोंसे हे अर्जुन ! मैं न्याराहूँ इत्यादि 'अब' जो तू कहे कि मन चित्त बुद्धि ये ही सब देहके व्यापार कर्ता हैं यह अन्तःकरणकी वृत्ति चार प्रकारकी है मन चित्त बुद्धि अहंकार ये भी तत्त्वोंमें हैं यह स्वतः जब इन इंद्रियोंका प्रेरक इनसे जुदा है वही अन्तर्यामी है उसकी प्राप्तिसे कल्याण होताहै तहां प्रमाण ।

"घर्षण-स्नान"

नियम छठा:—

वक्तव्य:—ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये मन का और वाणी का पवित्र रहना अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि गन्दे शरीर से मन भी गन्दा बन जाता है। गन्दगी रोग का घर है। जो पुरुष रोगी है वह कभी ब्रह्मचारी नहीं हो सकता। पुनः रोगी शरीर से दीन और दुनियां दोनों डूब जाते हैं। अतः शरीर को सदा शुद्ध व वलिष्ठ वनाये रखना प्राणि मात्र का सव से प्रथम और मुख्य कर्तव्य है।

एक समय हमारी तरफ एक मनुष्य मोहर्रम में शेर वनाया गया था। शरीर में वारनिश मिलाया हुआ पीला रंग सर्वत्र पोत दिया गया था। दिन भर खेला-कूदा और रात को घर लौटा। थकावट के कारण जल्दी सो गया। सूर्योदय हुआ। ८-९ बजने पर भी नहीं उठा, तव लोग घवड़ा गये। पुकारने पर भी जव नहीं वोला तव लोगों ने किवाड़ तोड़ डाले और क्या देखते हैं कि वह मुर्दे की तरह अचल पड़ा है। तुरन्त डाक्टर को वुलाया। डाक्टर ने आते ही फौरन उस शेर को टारपेन तेल, गरम पानी और सावुन से खूब रगड़ कर साफ़ किया। जव उस मनुष्य का शरीर स्वच्छ हुआ, चमड़े के सव छिद्र जव साफ़ खुल गये, तव कहीं १५ मिनट के वाद उसने गहरी सांस ली और आँखें खोली। अन्त में वह चंगा हो गया। इस दृष्टान्त से यह सिद्ध हुआ है कि नाक और मुँह से भी हमारे शरीर का चमड़ा कहीं अधिक साँस लेता है। चमड़े के छिद्र वन्द होने से नाक और मुँह खुले रहते

श्रुतौ ।

श्लोक–उत्तिष्ठतजाग्रतप्राप्यवरान्निबोधत ।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गम्पथस्तत्कवयो वदंति ॥

भाषार्थ–जो धारना नहीं केवल शास्त्र पढा और सुना तो विना धारण बोधके छुराकी धारपरका चलना ज्ञानीको जगत्में ऐसा ज्ञानीही कहतेहैं ।

श्लोक–ज्ञानं निःश्रेयसार्थाय पुरुषस्यात्मदर्शनम् ।
यदाहुर्वर्णये तत्ते हृदयग्रंथिभेदनम् ॥

भाषार्थ–विज्ञानद्वारा तत्त्ववेत्ता पुरुषकोही अंतर्यामीका दर्शन होता है परंतु जब विवेक कर हृदयमें मोहग्रंथि भेदन करे वह मोहनाश ज्ञानसेही होता है ।

आत्मपुराणे ।

श्लोक–अनादिरात्मा पुरुषो निर्गुणः प्रकृतेः परः ।
प्रत्यग्धामा स्वयंज्योतिर्विश्वं येन समन्वितम् ॥

भाषार्थ–वह आत्मपुरुष अनादिप्रकृति (माया) ते परेहै पूजनीय स्वयं प्रकाश याने वह अपनेको आप प्रकाशता यथा काचादिकमें सूर्यके प्रकाशते प्रकाशित सो सूर्य्यभी उसीसे प्रकाशितहै विश्वमें व्याप्त है ।

श्लोक–स एष प्रकृतिं सूक्ष्मां दैवीं गुणमयीं विभुः ।
यदृच्छयैवोपगतामभ्यपद्यत लीलया ॥

भाषार्थ–जो यह प्रभु सूक्ष्मरूप व्यापकप्रकृतलीला विषयहै तासे यह माया ते परमात्मा भिन्न है अविद्यासे परमात्मा मायामय भासताहै ।

श्लोक–स सर्वधीवृत्त्यनुभूतसर्व आत्मा यथा स्वप्नजनेक्षितैकः ॥
तं सत्यमानंदनिधिं भजेत नान्यत्र सज्जेद्यत आत्मपातः ॥

भाषार्थ–स्वअवस्थाके अधिष्ठाता द्वारा भगवतस्वरूपमें लयहोनेजावे-बीचमें संसारप्रपंचमें फँसताहै सो चित्तनिरोध कर अनुभवकर जासे संसारछूटता है जैसे स्वप्नका दुःख जागे विना नहीं हटता तैसे अज्ञानतानाश विना सच्चिदानंदकी प्राप्ति नहीं ।

है और आलस्य नष्ट होकर सम्पूर्ण शरीर चैतन्यमय बन जाता है। अतएव स्नान सूर्योदय के पहले ही कर लेना चाहिये, जाड़े और बरसात में ८-१० या १५ मिनट और गर्मी में पूरा आधा घण्टा तक, जब तक कि मस्तिष्क पूरा ठण्डा न हो तब तक स्नान अवश्य करना चाहिये। स्वप्न-दोष से पीड़ित मनुष्य को तो शाम को भी दुबारा नहाना चाहिये। जहाँ तक हो, ताजा और स्वच्छ शीतल जल मस्तिष्क पर खूब डालना चाहिये। स्नान के लिये कूप का जल सब ऋतुओं में अनुकूल होता है; जाड़े में गर्म और गर्मी में सर्द होता है। स्नान से लिये कूप में से जल अपने ही हाथ खींचो उससे सीना और दण्ड पुष्ट हो जाते हैं। जाड़े में स्नान के पहले १०-१२ दण्ड और २५-३० बैठक लगा लेने से जाड़ा नहीं मालूम होगा। परन्तु घर्पण-स्नान में ज़ोर से रगड़ने से जो कुछ व्यायाम होता है, उससे शरीर में काफ़ी गर्मी आ जाती है। स्नान के लिये पानी सदा ताजा, स्वच्छ व विपुल रहे, इस बात का स्मरण रहे। स्नान के पहले सब शरीर को सूखे तौलिया से व खुरखुरे वस्त्र से (मुलायम से नहीं) खूब ज़ोर से रगड़ो; रगड़ने में कुछ कमी न करो और कुछ डरो भी मत। पर हाँ उचित जगह पर उचित ज़ोर लगाओ, नहीं तो मारे रगड़ो के आँख ही फोड़ लोगे। तौलिया से रगड़ने के बाद हाथ से रगड़ो। हाथ के रगड़ने से शरीर में एक बिजली पैदा होती है। जो कि शरीर के तमाम रोगों को हटाती है। इस कारण शरीर का प्रत्येक अवयव अच्छी तरह से रगड़ना चाहिये। जहाँ संघर्षण न होगा उतनी ही जगह कमज़ोर और रोगी बनी रहेगी, यह बात ध्यान में रक्खो। पेट को ठीक रगड़ने से पेट के अनन्त विकार नष्ट होते हैं और पाखाना भी साफ़ होता है।

अन्तःशुद्धहुआ तो परत्वज्ञान शुद्ध हुआ तो परमात्माका स्वरूपभी लक्ष्य होताहै सो अन्तः शुद्धि वेदांतका श्रवण गुरुमुखद्वारा ताके अर्थका स्मरण, यही ममनहै पश्चात् ताको एकातमें विचारना सोई निदिध्यासन फिरि विवेकद्वारा सत् असतका लक्ष्य निश्चय एकांतमें परमात्मा श्रीनित्यविहारी राधावल्लभकी स्वरूपसौंदर्य्यतामें मनका लय होजाना सो ज्ञानहै शिष्य यें ऊपर कहे भये परत्वज्ञानको जो पुरुष गुरुद्वारा समझेगा सो मायाके जालमें न फँसैगा सो ज्ञानप्रकरण तुमसे कहा अब जो इच्छा हो ताके विषे प्रश्न करो इति !

इति श्रीयुतशुक्लदुर्गाप्रसादात्मज अ० र० प्रियादासशुक्लप्रणीतश्रीशास्त्रसारसिद्धांतमणौ ज्ञानप्रकरणं सम्पूर्णम् ॥ ५ ॥ श्रीराधामाधवार्पणमस्तु ।

अथ भक्तिप्रकरण ।

शिष्यवाक्य ।

हे—गुरुजी महाराज ! यह तो आपने ज्ञान कहा तासे परमात्माके स्वरूपवेदादि शास्त्र अवलोकन तथा गुरुमुख द्वारा सुन निश्चयकर कहा अब कृपाकर यह कहिये कि वह कौन धर्महै जासे भगवत् श्रीनित्यविहारीजीमें प्रीति अहर्निशि हो मनस्थिर चित्तका लय देहाध्यासाय देहकी भी सुध न रहै क्षुधा पिपासाकाभी भास न हो । इति ।

गुरुवाक्य ।

श्लोक—वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्य्ययः ।
तत्रापि द्विविधो धर्मः प्रवृत्तोथ निवृत्तिकः ॥

भाषार्थ—हे शिष्य ! देखो वेदमें दोप्रकारके धर्म कहेहैं एकतो निवृत्ति जिससे भगवत्प्राप्ति दूसरा प्रवृत्ति यथा यज्ञादिक जिनके करनेसे स्वर्ग इंद्रलोकका वास सो अनित्यहै गीतामें भगवान श्रीकृष्ण महाराजने श्रीमुख से कहाहै कि "क्षीणेपुण्ये मर्त्यलोकंविशंति अर्थ जब पुरुषकी पुण्यक्षीण होजाताहै तब देवतालोक तिरस्कारकर निकासदेते हैं तब प्राणी मर्त्यलोकमें जन्म लेता है

घर्षण-स्नान ही है। यदि एक ही दिन में घर्षण-स्नान से मनुष्य में इतना आनन्द, उत्साह आरोग्य, शान्ति व कान्ति दिखाई देती है, तो नित्यप्रति इस प्रकार विधिपूर्वक घर्षण-स्नान करने से मनुष्य का आनन्द, उत्साह, आरोग्य शान्ति व कान्ति और भी अधिक बढ़ेगी इसमें सन्देह ही क्या है ?

स्नान के कुछ शास्त्रीय नियम—(१) रोज दो मरतबे स्नान करना अच्छा है। गर्मी के दिनों में तो हमको दो मरतबे स्नान करना ही चाहिये। क्योंकि दिन भर के पसीने के कारण शरीर से बड़ी ही बदबू निकलने लगती है। पसीने में बहुत ज़हर होता है, यह बात ध्यान में रखो। (२) महीने में एक मरतबे गर्म पानी और साबुन या सोड़ा से नहाना बड़ा हीं स्वास्थ्यप्रद होता है, त्वचायें और भी साफ़ हो जाती हैं। परन्तु रोज़ गर्म पानी से नहाना अच्छा नहीं है। यह अप्राकृतिक है। उससे मनुष्य कमज़ोर नाज़ुक, चंचल व विषयी बन जाता है। नित्य गर्म पानी से नहाना ब्रह्मचर्य के लिये बहुत ही हानिकर है। (३) नदी और तालाब का स्नान और भी अच्छा होता है। शास्त्र में समुद्र-स्नान की महिमा सब से अधिक है क्योंकि समुद्र जल में एक प्रकार की बिजली होने के कारण मनुष्य अधिक निरोग और चैतन्यमय बन जाता है। यदि घर के पानी में भी समुद्र का नमक मिलाकर स्नान किया जाय तो उससे भी विशेष फायदा होता है। बाद में शुद्ध जल से स्नान कर लेना चाहिये। (४) तैरने में बहुत से लाभ हैं। तैरने में सभी अवयवों को व्यायाम होता है, सीना पुष्ट और विस्तीर्ण होता है, फेफड़े शुद्ध और बलवान होते हैं और सम्पूर्ण शरीर निरोग, फुर्तीला, सुदृढ़, दमदार, उत्साही और शक्तिशाली बनता है। परन्तु

अर्थ–सो भक्ति परमेश्वरके विषय परमप्रेमरूपहै वशीकरण है याने प्रेम-लक्षणा भक्तिसे भगवत् प्राप्त होताहै।

सूत्र–अमृतस्वरूपा च।

अर्थ–सो भक्ति अतमृतवत्है याने जन्ममरणके कारण तीनताप "आध्यात्मिक" "आधिभौतिक" "आधिदैविक" इन रोगोंके नाश करनेको भक्ति अमृतवत्है। इति।

सूत्र–ॐ यं लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवत्यमृतो भवति तृप्तो भवति

भाषार्थ–यह वह भक्ति अमृतहै जासे भगवान् वश होतेहैं जाको पाय पुरुष जीवनमुक्त हो निर्भय विचरतेहैं।

सूत्र–यत्प्राप्यनकिंचिद्वाञ्छतिनशोचतिनद्वेष्टिनरमतेनोत्साही भवति। इति।

भाषार्थ–जिस भक्तिको पायकर पुरुष किसी वस्तुकी चाहना नहीं करता न शोक न मोह न किसीसे वैरभाव काहेतें कि कार्य्य कारण विना नहीं संभवै।

सूत्र–यज्ज्ञानान्मत्तो भवति स्तब्धो भवत्यात्मारामो भवति।इति।

भाषार्थ–जिस भक्तिको पाय मनुष्य मत्त होजाताहै देहका अनुसंधान भूल जाताहै सर्वत्र भगवान् ही दृष्टि आताहै।

सूत्र–जडोन्मत्तपिशाचवत्।

निशम्य कर्माणि गुणानतुल्यान्वीर्य्याणि लीलातनुभिः कृतानि। यदातिहर्षात्पुलकाश्रुगद्गदः प्रोत्कंठ उद्गायति रौति नृत्यति। यदा ग्रहग्रस्त इव क्वचिद्धसत्याक्रंदते ध्यायति वंदते जनम्। तदा पुमान्मुक्त समस्तबंधनस्तद्भावभावानुकृताशयाकृतिः। निर्दग्धबीजानुशयो महीयसा भक्तिप्रयोगेण समेत्यधोक्षजम्। इति।

और सब बातों में तेजस्वी दिखाई देते हैं ! परन्तु हम लोग, उन्हीं के भाई, मुर्दों के समान निर्वीर्य गोबरगणेश दिखाई दे रहे हैं। यह कितने शोक और लज्जा की बात है ? अब हमें अवश्य ही जागना चाहिये और हमेशा उन्नतिप्रद काम करने चाहिये। सब उन्नति का मूल शरीर है। अतः उसे पहले सुधारना चाहिये। योंही हाथ घुमाने से जैसे कोई बर्तन (पात्र) साफ़ नहीं हो सकता, उसे जोर से ही रगड़ना पड़ता है, तद्वत् शरीर रूपी बर्तन भी, बग़ैर घर्षण-स्नान के बाहर भीतर से साफ़ और चमकीला नहीं हो सकता। काक-स्नान से मनुष्य सदा रोगी, मलीन, आलसी, विषयी, निस्तेज और अल्पायु होता है। परन्तु वही मनुष्य यदि घर्षण-स्नान आज ही से शुरू कर दे, तो थोड़े ही दिनों में पूर्ण निरोगी, निर्विकारी, उत्साही व तेजस्वी बन सकता है। ब्रह्मचर्य तथा दीर्घ जीवन के लिये घर्षण-स्नान अत्यन्त आवश्यक और अमृत तुल्य है।

"सादा व ताज़ा अल्पाहार"

नियम सातवां :—

वक्तव्यः—ब्रह्मचर्य और भोजन में अत्यन्त घनिष्ट संबन्ध है। भोजन के महत्व को बहुत लोग नहीं जानते, इस कारण उन्हें अत्यन्त दुःख उठाना पड़ता है। जिसे ब्रह्मचारी बनना है, उसको सादा और अल्पाहारी अवश्य ही बनना होगा। अधिक भोजन करने वाला सात जन्म में भी ब्रह्मचारी नहीं हो सकता। क्योंकि जोर की आँधी जैसे पेड़ों को उखाड़ डालती है, वैसे ही कामदेव

भाषार्थ—जब तुम चित्त एकाग्र कर उसमें लगावोगे उसके दर्शनविना तुम्हें व्याकुलता होगी तब वह दशा देखी तुम्हें सच्चिदानंदमूर्ति बाहेर भीतर सब जगह लक्ष्य आवेगा जबतक उसकी कृपा नहीं तबतक यह आनन्द दूरहै जब कृपा करेगा तब अपने गुण तुम्हारे हृदयमें स्थित कराय तुमसे गँवाय आप सुनेगा तासे एक भगवद्दर्शन गहो।

सूत्र—निरोधस्तु लोकवेदव्यापारन्यासः।

भाषार्थ—जब लोकके प्रपंच मिथ्याभाषण कुसंगका त्याग क्रोधका त्याग अब वेदव्यापार रहा ताको तात्पर्य्य याने नानाप्रकारके कर्म फलार्थ तिनसे चित्त उपराम तब अन्यउपाय रहित केवल श्रीविहारीजीमें चित्त लगाना॥

गीतायाम्।

श्लोक—अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

भाषार्थ—देखो श्रीकृष्णमहाराज कहतेहैं कि हे अर्जुन! जो पुरुष मेरेको अनन्यभावसे चिंतवन करताहै उसे मैं सदा सुलभ हूं जो मेरा चिंतवन करता है तिसके सदाही समीपहूं।

पुनः गीतायाम्।

श्लोक—अनन्याश्चिन्तयंतो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

भाषार्थ—हे अर्जुन जो पुरुष अनन्यता याने एक मेराही चिंतवन करताहै मेरे व्यतिरिक्त कुछ नहीं जाने यथा पतिव्रता स्त्री जबसे पाणिग्रहण याने विवाह हो जाताहै तबते एक पतिमें स्नेह और पतिके कुलधर्म करती तब मातापिताके कुलके धर्म परित्याग कर केवल पतिकुलके कर्म करतीहै तैसे जो मेरी शरण आया उसे लोकवेदव्यापार (कर्म) से क्या प्रयोजन काहेते मेरी प्राप्ति तीनगुणोंसे भिन्न ताको प्रमाण सुनो।

चाहिये। "भोजन तारता भी है और मारता भी है।" अधिक भोजन से मनुष्य जीते जी ही मुर्दा और बेकार बन जाता है। भक्तदास वामन कहते हैं:—

"ज्यादा वायु भरनसे, फूटबाल फट जाय।
बड़ी कृपा भगवान् की, पेट नहीं फट जाय ॥१॥
"यदपि न दीखत पेट फटा, फटत मनुज का देह।
रोग भयंकर होत है, बने नरक का गेह" ॥२॥

अतः तन्दुरुस्ती के लिये खाओ; रोगी बनने के लिए मत खाओ। जो कुछ खाओ जीने के लिए खाओ, मरने के लिये मत खाओ। बहुत भोजन करने वाला बहुत जल्द मरता है। अमेरिका के सुप्रसिद्ध डाक्टर म्याक्क्याडन कहते हैं:—"आजकल साधारणतः लोग भोजन के बहाने जितने पदार्थों का सत्यानाश करते हैं उनके चतुर्थांश से ही उनका काम बड़े आनन्द से चल सकता है। अकाल में अन्न के अभाव से लोग उतने नहीं मरते, जितने कि सुकाल में अधिक अन्न खाने से तरह तरह के रोगों से मर जाते हैं।" देश में दुष्काल भी पेटू लोगों की ही कृपा से पड़ता है। अतः पेटू मनुष्यों को स्वयं अपना तथा देश का भी वैरी समझना चाहिये।

अरेरे! ग़रीब लोग बेचारे भोजन न मिलने से मरते हैं और धनी तथा पेटू लोग अधिक खाने से मरते हैं, केवल मध्यम प्रकार के मिताहारी पुरुष ही ब्रह्मचारी और दीर्घजीवी हो सकते हैं। देश में प्लेग, कालरा भी पेटू लोगों के ही कारण होते हैं, क्योंकि पेटू मनुष्य बहुत गन्दे होते हैं। कमाना, खाना और पाखाना ये ही उनके इस संसार में के तीन मुख्य काम होते हैं और अन्त में वे

भाषार्थ-श्रीकृष्णमहाराज कहतेहैं कि हे अर्जुन! एकतो दुराचारी तामें महादुराचारी भी होगा परंतु एक अनन्यभावते मेरेमें मन अर्पणकर अहर्निश मेरे गुणानुवाद गाना सुननेमें चित्त जाका लीन ताको देहादिके किये कर्म उसे बंधन नहीं करसकते केवल मेरेमें प्रीति चाहिये यावत् कामनाकी उत्पत्ति भोग ये स्थूलशरीरके धर्म सो स्थूलशरीर नाशवान् है सूक्ष्म निर्विकार है।

सूत्र-नारदस्ततदर्पिताखिलाचारस्तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति ।

भाषार्थ--नारदमुनिजी कहतेहैं जेते आचार विचार विधि निषेध हैं सो सब श्रीनित्यविहारीके प्रेममें विस्मरणकर मत्त हो उनका गुणानुवाद गावो सो प्रमाण ।

सूत्र-यथा व्रजगोपिकानां प्रेम ।

भाषार्थ-जैसे व्रजगोपिका प्रेम कि जिनने लोक वेदमर्यादा समुद्रसे बिनाश्रम प्रेमजहाजद्वारा पार भईं ।

भागवते दशमे

श्लोक-न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः।
या माभजन्दुर्जरगेहशृंखलाः संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना॥

भाषार्थ-श्रीलालजी महाराज गोपिनते कहतेहैं कि हे-गोपियो! हम ब्रह्माकी आयु हजार धारणकर तुम्हारी सेवा करैं तौ भी तुम्हारे प्रेमके एक क्षणकी बराबर हमारी सेवा नहीं यासे हम तुम्हारे ऋणी सदा रहैंगे वह कैसा प्रेम उन व्रजगोपियोंका सो कहैहैं ।

श्लोक-गोप्यः कृष्णे वनं याते तमनुद्रुतचेतसः ।
कृष्णलीलाः प्रगायन्त्यो निन्युर्दुःखेन वासरान् ॥

भाषार्थ-जब श्रीकृष्ण महाराजे गाईं चरावने जाते तब गोपी अपना मन उनके साथ करदेतीं और आप उनका चरित्र गाय दिवस बितातीं पुनः जब रहसविषे अंतर्धान भयेहैं तभी उनकी लीला गाय वृक्षोंसे पूंछतीं फिरीं

कम भोजन से वे कमज़ोर बन जाते हैं। इसी गंभीर सिद्धान्त को जानकर महर्षियों ने शास्त्रों में उपवास का महत्व वर्णन किया है।

भक्तदास वामन प्रश्नोत्तर में कहते हैं:—"निकम्मा कौन है? पेटू। महापुरुष की क्या पहिचान है? जो अपने को सब से छोटा समझता हो। महापुरुष कैसे बनें? मन को वश में करने से। मन कैसे वश होय? कम खाने से। कम खाना कैसे सीखे? आहार को थोड़ा थोड़ा घटाने से। आहार कैसे घटे? रोज़ सादा और प्राकृतिक भोजन करने से। सादा भोजन कैसे प्रिय लगे? भूख के समय खाने से और प्रत्येक ग्रास (कवर) को खूब अच्छी तरह चबाने से। भूख का समय कैसे जाने? नियम बांध लेने से और फिर बीच में कुछ भी न खाने से।"

सचमुच प्रकृति के अनुसार चलने ही से हम पेटूपन से और तज्जन्य अनन्त विकारों से बच सकते हैं। भोजन में सौ प्रकार रहने से मनुष्य अक्सर ज्यादा खा लेता है और फिर सौ प्रकार से सौ विकार अवश्य ही उत्पन्न होते हैं।

आस्ट्रेलिया के प्रसिद्ध डाक्टर हर्न कहते हैं:—"मनुष्य जितना खा लेता है उसका तिहाई हिस्सा भी नहीं पचा सकता। बाकी पेट में रह कर रक्त को विषैला बनाकर असंख्य विकार पैदा करता है; जिससे कि प्राणशक्ति का दोहरा नाश होता है, एक तो इस फालतू भोजन को पचाने में और दूसरे उसको बाहर निकालने में।

यदि मनुष्य भोजन कम प्रकार के खाय, नमक-मिर्च मसाला से रहित सात्विक भोजन करे, प्रत्येक ग्रास को खूब महीन पीस कर चबा चबाकर खाय, शान्ति रक्खे और जितना पचा

श्लोक—षष्टिवर्षसहस्राणि तपस्तप्तं मया पुरा॥नंदगोपव्रजस्त्रीणां पादरेणूपलब्धये॥ अहो भाग्यमहो भाग्यं नंदगोपव्रजौकसाम् । यन्मित्रं परमानंदं पूर्णं ब्रह्म सनातनम् ॥

भाषार्थ—श्रीब्रह्माजी कहतेहैं कि मैंने छह हजार वर्ष पूर्वमें महाकठिन तप किया तब हमें व्रजगोपिनकी चरनरज मिली धन्यहै२ श्रीनंदरायजी महाराजको जाके गृहमें पुराणपुरुषोत्तम सच्चिदानंदमूर्ति बालक्रीडा करते जो हमें स्वप्नमें भी नहीं ध्यानमें आया सो आज गोपिनके पदरजके प्रभावते सो श्यामसुंदरमूर्ति देखि हम कृतार्थ हुए ऐसे श्रीकृष्णमहाराज गोपिनका वैभव उद्धवसे कह व्रजमें भेजनेके समयमें श्रीलालजी उनके प्रेमकी दशा वर्णन करैहैं ।

श्लोक—ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः ।
ये त्यक्तलोकधर्माश्च मदर्थे तान्बिभर्म्यहम् ॥
मयि ताः प्रेयसां प्रेष्ठे दूरस्थे गोकुलस्त्रियः ।
स्मरंत्योंगविमुह्यन्ति विरहौत्कंठ्यविह्वलाः ॥
धारयन्त्यतिकृच्छ्रेण प्रायः प्राणान्कथंचन ।
प्रत्यागमनसंदेशैर्बल्लव्यो मे मदात्मिकाः ॥

भाषार्थ—हे उद्धव ! उन व्रजगोपिनने मेरेमें चित्त लगाया है मैं ही उनका प्राण हूँ मेरे प्रेममें उन्होंने देहके व्यवहार छोडदिये जो पुरुष मेरेमें प्रेम करते हैं उनके, लोक वेद धर्म छूटजाते हैं उन्हें अंगीकार करताहूँ जब गोपियां हमें स्मरणकरतीं तब विरहकी उत्कंठासे शरीरकी सुध नहीं रहती बडी कठिनतासे वे प्राणधारण करैहैं । मेरा संदेश सुननेकी इच्छासेही धीरतासे दिवस बितातीहैं सो तुम जब वहां जाय देखोगे उनका अविचलप्रेम तब जानोगे मेरे कथनते उनका प्रेम बहुतहै सो हे शिष्य ! भगवतवाक्य सुन उद्धव व्रजमें जाय उन व्रजगोपिनका प्रेम देख और अनुराग निजमुखप्रशंसा उनकी करी है ताको तुम सावधान हो सुनो ।

सात्विक अल्पाहार किया करेगा तो उसकी कुबुद्धि आप से आप नष्ट हो जायगी और उसमें ईश्वरीय तेज प्रगट होने लगेगा। कुछ ही दिन तक अभ्यास करके देख लीजिये।

सात्विक आहार:—जो ताज़ा, रसयुक्त, हलका, स्नेहयुक्त, स्थिर (nutritious) मधुर, प्रिय हो। जैसे गेहूँ, चावल, जौ, साठी, मूंग, अरहर, चना, दूध, घी, चीनी, सेंधा नमक, रतालू (शकरकन्द) शुद्ध व पके फल, इनको सात्विक आहार कहते हैं।

राजसी आहार:—अत्यन्त उष्ण, कडुवा, तीता, नमकीन, अत्यन्त मीठा, रूखा, चरपरा, खट्टा, तेलयुक्त, दोषयुक्त, गरिष्ठ, जैसे पूड़ी, कचौरी, मालपूआ, मिठाई, खटा, लालमिर्च तेल, हींग, प्याज, लहसुन, गाजर उरद, मसूर, सरसों, मसाला, मांस, मछली, कछुआ, अंडा, शराब, चाय, काफ़ी, डांफी, कोको, सोडा, लेमन, पान, तम्बाकू, गाँजा, भाँग, अफीम, कोकेन, चरस, चण्डोल इनको राजसी आहार कहते हैं।

राजसी आहार से मन चंचल, कामी, क्रोधी, लालची और पापी बन जाता है; रोग, शोक, दुख, दैन्य बढ़ते हैं और, आयु, तेज, सामर्थ्य और सौभाग्य वेग के साथ घट जाते हैं। राजसी पुरुष कदापि ब्रह्मचारी नहीं हो सकता।

तामसी आहार:—तामसी आहार में राजसी आहार तो आता ही है; परन्तु उसके अलावा जो बासी रसहीन, गला हुआ, दुर्गन्धित, विषम (जैसे एक ही साथ तेल के व घी के पदार्थ खाना वगैरह) घृणित व निन्द्य होता है, इसको "तामसी आहार" कहते हैं।

तामसी आहार से मनुष्य प्रत्यक्ष राक्षस बन जाता है। ऐसा

चल श्रीकृष्ण महाराजके समीप आय दंडवत् कर सब कुशल नंदादिव्रज-वासिनकी कह गोपिनके प्रेमकी प्रशंसाकी और गद्गद हो नेत्रोंसे जलप्रवाह बहरहे और फिर भगवत्से प्रार्थनाकी कि हेप्रभो! मोपै कृपा करौ मैं आपको सखा जानताथा यह नहीं समझता था कि आप परब्रह्महो यह बोध गोपिनके चरनरजसे हुआ सो मेरी प्रार्थना सुनो।

श्लोक—आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्॥
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा
भेजुर्मुकुंदपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्॥
या वै श्रियार्चितमजादिभिराप्तकामै-
र्योगेश्वरैरपि यदात्मनि रासगोष्ठ्याम्॥
कृष्णस्य तद्भगवतश्चरणारविंदं
न्यस्तं स्तनेषु विजहुः परिरभ्य तापम्॥

भाषार्थ—उद्धवजी भगवत्से कहेहैं कि हे प्रभो यदि आप प्रसन्न हो तौ मेरी आशाको पूर्ण कीजिये सो का ताको कहै हैं कि श्रीवृन्दावनमें गुल्म लता (छोटीबूटी) करो काहेतें कि जब व्रजगोपी निकसैंगी तब उनके पदकी रज हमारे ऊपर परैगी सो हम कृतकृत्य होंगे यदि मोपै हे मुकुन्द प्रसन्नहो यह गतिको हमें भेजो जो कहो गोपिनके पदरजमें कहा सो मैं कहनेको समर्थहूं उनकी प्रेमार्द्रता आपने रहसमें देखा होगा कि जिस चित्तनिरोधके अर्थ योगीगुफानमें निवास करतेहैं सो चित्तनिरोध विनाश्रम प्रेम द्वारा गोपिन किया। "श्रीवल्लभसंप्रदायाधिष्ठ महाप्रभुजी अपने संन्यासनिर्णय-ग्रन्थमें अपनी संप्रदायकी आचार्यमाना।"

श्लोक—यच्च दुःखं यशोदाया नन्दादीनां च गोकुले।
गोपिकानां च यद्दुःखं तद्देव स्यान्मम क्वचित्॥
गोकुले गोपिकानां च सर्वेषां व्रजवासिनाम्।

भोजन ही में उसकी पूरी तृप्ति हो जायगी और प्राण-शक्ति का भी बहुत कम नाश होगा; भोजन भी बहुत जल्द पचेगा; पाखाना भी साफ होगा और इन्द्रिय-दमन की भी शक्ति उसे बहुत जल्द प्राप्त होगी। लेखक का यह स्वयं अनुभव है। इसे कोई भी आजमा सकता है।

भोजन बिना अच्छी तरह चबाये जो जल्दी खा लेते हैं, वे जल्दी ही मर जाते हैं। चर्वित चर्वण से भोजन के प्रत्येक परमाणु से मनुष्य प्राणतत्व को (जो कि प्राणिमात्र के जीवन का मुख्य आधार है उसको) ब्रह्म की भावना से विशेष खींच सकता है। अतः "अन्नं ब्रह्मेत्युपासीत।" अन्न में ब्रह्म-दृष्टि रक्खो और "अन्नं दृष्ट्वा प्रणम्यादौ।" अन्न को प्रथमतः प्रणाम करके फिर भोजन किया करो। योगी लोग ऐसे ही करते हैं और इसी कारण वे थोड़े ही भोजन में तृप्त हो जाते हैं और उनमें ब्रह्म-भावना के कारण दैवी सामर्थ्य प्रगट होता हुआ स्पष्ट दिखाई देता है। अमीरी भोजन करना मानों साक्षात् साँप पर पैर रखना है। ऐसे लोगों में काम क्रोध का विष बहुत ज्यादा फैला हुआ रहता है। इस बात का पता धनी लोगों पर दृष्टि डालने से तत्काल लग जाता है। धनी लोगों का यह एक विचित्र खयाल है कि "जो कुछ वीर्य नष्ट किया जाता है वह हलुआ, पूड़ी, रबड़ी उड़ाने से फिर वापिस मिलता है।" परन्तु यह उनकी बड़ी भारी मूर्खता है। जो भोजन बड़े बड़े पहलवानों से भी बिना खूब कसरत किये, नहीं पच सकता; वह गरिष्ट भोजन, दिन-रात निठल्ले बैठे हुए और अधिक भोजन से और भोग-विलास के कारण जिनकी आँते बेकाम हो गई हैं, उनको कैसे पच सकता है? "धातुक्षयात् स्रवते रक्ते मन्दः संजायतेऽनलः।"

गीतायाम् ।

श्लोक-तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योपि मतोधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

भाषार्थ-तपसे कर्मसे ज्ञानसे योगी श्रेष्ठहै तासे हे अर्जुन तू भी योगी हो यह उपदेशदे भक्तिका प्रतिपादन करते ।

गीतायाम् ।

श्लोक-योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनांतरात्मना ।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ।

भाषार्थ-योगद्वारा मेरेको अंतरात्माद्वारा चिंतवन करते परंतु जो गति मेरेभक्तनको प्राप्त याने मेरेको मेरी भक्ति करनेवालेही पाते ऐसा मेरा मतहै । पुनः-

भागवते ए०

श्लोक-मुक्तिं ददाति कर्हिचित्स्म न भक्तियोगम् । इत्यादि ।

पुनः ।

श्लोक-न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव ।
न स्वाधायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ।
भक्त्याहमेकया ग्राह्यः शुद्धया प्रियसत्तम ॥
भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा स्वपाकानपि संभवात् ॥

भाषार्थ-जो तू उद्धव मेरेसे मुक्ति चहै तो मेरी भक्ति न कर जो गति ज्ञानीको न सांख्यको न योगीको मिले सो गति भक्तिद्वारा मिलती है मेरी भक्तिमें न वर्णाश्रमका विचार न ज्ञानकी सहायताका प्रयोजन है ।

श्लोक-केवलेन हि भावेन गोप्यो गावः खगा मृगाः ।
येऽन्यमूढधियो नागाः सिद्धा मामीयुरंजसा ॥
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा यदि चेतरः ।
विष्णुभक्तिसमायुक्तो ज्ञेयः सर्वोत्तमोत्तमः ॥

उन्हीं की तरह प्राकृतिक आहार करना होगा। जो चीज जिस हालत में पैदा हुई हो उसे वैसे ही खाने से भोजन भी कम लगता है और फ़ायदा भी खूब होता है। परन्तु ज्यों ज्यों उसका रूप बदलता जाता है, त्यों त्यों वह चीज आरोग्य के लिये हानिकार होती जाती है। कच्चे गेहूँ, चना खाना अधिक फ़ायदेमन्द है; क्योंकि इसमें प्राणशक्ति कूट कूट कर भरी रहती है और भोजन भी कम लगता है। परन्तु बचपन ही से आंतें दुर्बल हो जाने के कारण मनुष्य उसे बिना पकाये पचा नहीं सकता। अन्न को पकाने से प्राणशक्ति बहुत नष्ट हो जाती है और इसी कारण अधिक भोजन करने पर भी मनुष्य की तृप्ति नहीं होती और वह अन्यान्य रोगों से पीड़ित हो जाता है। पूड़ी, कचौड़ी आदि तले हुये पदार्थों की प्राणशक्ति तो और भी जल जाती है। इसलिए जहाँ तक हो प्राकृतिक आहार ही करना सर्व-श्रेष्ठ है। मैदा से भूसीयुक्त आटा श्रेष्ठ, भूसी युक्त आटा से दलिया श्रेष्ठ, दलिया से उबले हुए गेहूँ श्रेष्ठ, उबले हुए गेहूँ से कच्चे गेहूँ और जौ श्रेष्ठ, कच्चे गेहूँ, चावल, चना इत्यादि से दुग्धाहार श्रेष्ठ और दुग्धाहार से पके ताजे फल श्रेष्ठ हैं।

फलाहार:—फलाहार अत्यन्त प्राकृतिक और प्राणशक्ति से परिपूर्ण आहार है। फल में सूर्यतेज और बिजली बहुत ही भरी रहती है। इस कारण फलाहारी को सहसा कोई भी रोग नहीं हो सकता। फलाहार से बुद्धि अत्यन्त तीव्र होती है। वीर्य की वृद्धि होती है और काम विकार दब जाते हैं। हमारे पूर्वज ऋषि मुनियों का कन्दमूलफलाहार ही मुख्य आहार था और इसी कारण वे इतने तेजस्वी, बुद्धिमान शान्त, ब्रह्मचारी और दैवीसामर्थ्य

तस्मात्त्वमुद्धवोत्सृज्य चोदनाः प्रतिचोदनाः ।
प्रवृत्तं च निवृत्तं च श्रोतव्यं श्रुतमेव च ।
मामेकं शरणं व्यक्तमात्मानं सर्वदेहिनाम् ॥
याहि सर्वात्मभावेन मया स्या ह्यकुतोभयः ।
भक्त्याहमेकया गृह्यः शुद्धयात्मयियासताम् ॥
भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकमपिसंभवात् ।
धर्मसत्यदयोपेता विद्यया तपसान्विताः ॥
मद्भक्त्यपेतमात्मानं न सम्यक्प्रपुनंति हि ।

भाषार्थ—हे-उद्धव अंकिचन (दरिद्री) हो या जितेंद्रिय या शान्तहो परंतु इन दोनोमें जो मेरी भक्ति करता वो हमें प्रियहै अज्ञानी हो चहो गुणवानहो परंतु मेरेमें प्रीतिहो चाहै धर्मकोभी न जानताहो तोभी डरनहीं प्रवृत्तिमार्ग चाहै निवृत्तिमार्ग जिसने आत्मा समर्पणकी हमें याने मेरी शरन आया उसे कोई बाधा नहीं करता ।

गीतायाम् ।

श्लोक—सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

भाषार्थ—हे अर्जुन तू विधिनिषेध जे धर्म तिन्हें छोड हमें भज याने हमारी शरण ले तो तेरे तीनप्रकारके कर्मोंका भोग मैं नाश करदेवोंगा संचित आगामी कर्तृत्व सो वात्सल्यगुणद्वारानिवृत्त यथा गाई अपने बच्चेको चाट पोंछ साफ करदेतीहै तैसे मैं कृपादृष्टिसे तेरे पाप दूर करूंगा मेरा अवतार केवल भक्तके अर्थ है न कि कोई कामनाके अर्थ ।

नारदीये ।

श्लोक—अनुग्रहाय भक्तानां मानुषं देहमाश्रितः ।
भजामि तादृशीं क्रीडां यां श्रुत्वा तत्परो भवेत् ॥

भाषार्थ—याने भक्तनके ऊपर अनुग्रह मैं मानुष देह धारन करताहूं जैसी भावना कर मुझे भजताहै तैसेही रूप क्रीडा कर दर्शन देताहूं प्रसन्न रखताहूं

परदेश से स्वदेश की ही चीज़ श्रेष्ठ और लाभकारी है। अतः फल की जगह आलू, कन्द, ककड़ी, पक्का कोहड़ा और शाक भाजी भी काम में लाई जा सकती है।

श्री लक्ष्मणजी ने चौदह वर्ष पर्यन्त फलाहार ही किया था। इसी कारण वे हनुमानजी की तरह अखण्ड ब्रह्मचारी रह सके और उनका सामर्थ्य और तेज श्री रामचन्द्रजी से भी अधिक वढ़ गया था। अस्तु; जिन्हें फलाहार शुरू करना हो; वे धीरे धीरे शुरू करें! प्रथम कुछ दिन तक नमक, मिर्च, मसाला से रहित भोजन का अभ्यास करें; फिर एक मरतवे सादा अल्प भोजन तथा दूसरे मरतवे अल्प फलाहार करें; कुछ दिन के वाद फिर शुद्ध फलाहार करने लग जायँ; एक दम कोई काम करने से लाभ के वदले हानि ही होती है, यह वात हमेशा ध्यान में रक्खो।

दुग्धाहारः—दुग्धाहार फलाहार से घटिया परन्तु अन्नाहार से वढ़िया आहार है। दूध घर का और तिस पर भी काली गौ का श्रेष्ठ होता है। काली गौ को "कपिला" या "कामधेनु" कहते हैं। गौ का न हो तो काली भैंस का दूध लेना चाहिए। दूध वाली गाय वा भैंस वा वकरी निरोग व शुद्ध पदार्थ खाने वाली होनी चाहिए। अन्यथा रोगी वा अशुद्ध पदार्थ खाने वाली गाय भैंस व वकरी का दूध पीने से मनुष्य को भी वे रोग विना हुये कभी नहीं रहेंगे, यह वात स्मरण रहे। वाजारू दूध पीने से मनुष्य वहुत जल्द रोगी वनता है; क्योंकि उसमें रास्ते की धूल और गन्दी हवा में के असंख्य ज़हरीले कीड़े पड़ जाते हैं। यही हाल मिठाई का भी होता है। रोज़ हलवाई एक अंजुली भरी हुई वरैं, मक्खियाँ,

भाषार्थ–हे नारदजी! न मैं वैकुंठमें न योगिनके हृदयमें केवल वहीं रहताहूं जहां मेरे भक्तजन मेरा गुणानुवाद परमाह्लादसे गाते हैं तहां हम सुनते हैं सोई बात रामानुजसंप्रदायके कूरेशमुनिने कहा है ।

अतिमानुषग्रंथ ।

श्लोक–येत्वत्प्रियंतादिहपुण्यमपुण्यमन्यन्नान्यत्तयोर्भवतिलक्षणमत्रजातु।
धूर्तायितं तवहियत्किलरासगोष्ठ्यांतत्कीर्तनं परमपावनमामनंति ॥

भाषार्थ–कूरेशजी कहैहैं कि हे भगवन्! न कोई पापहै न कोई पुण्य जो तुम्हे प्रिय सोई पुण्य यहां हमारा कोई बल न जापका न मंत्रका काहेते कि संसारमें दो कर्म निषिद्ध चोरी जारी सो आपने माखन चुरायो गोपिनसे विहार हास्य कियो ताके भये कीर्तनप्रबंध श्रीमद्भागवतादि तिन्हे सुनके या गायके अनेक पामर तररहेहैं धन्यहै प्रभु भगवद्भक्तिमें जातिपांतिका भी कोई प्रयोजन नहीं ।

भारद्वाजसंहितायाम् ।

श्लो–न जातिभेदं न कुलं न लिंगं न गुणक्रियाः ।
न देशकालौ न विधिं सांख्ययोगौ ह्यपेक्षते ॥
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्राः स्त्रियोऽथा अन्त्यजास्तथा ।
सर्व एव प्रपद्येरन्सर्वधातारमच्युतम् ॥

भाषार्थ–भगवद्भक्तिमें जातिभेदका कुछ प्रयोजन नहीं न देशकाल न विधि निषेध सांख्य धर्म न योगका बल यहां भक्ति स्वतःसिद्ध जब प्रेमका उदय अन्तःकरणमें हुआ तब देहका भास भूलजाता तब ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इनमें कोई भी हो भगवद्भक्ति करे ऐसे वाक्य भगवान् कहैहैं हमें भक्त प्रिय हैं ।

गीतायाम् ।

श्लोक–मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

थोड़ा-थोड़ा पीने से—मुख में थोड़ी देर रख कर फिर पेट में उतारने से उसका सब सार खींचा जाता है और कुछ भी बेकार नहीं जाता है कोई भी चीज़ जल्दी से खाना, मानों रोगी बन कर जल्दी ही मरने की तैयारी करना है। अतएव सावधान !

मांसाहार:—मांसाहार सब से अधम और राक्षसी आहार है मांसाहारी लोग बहुत विकारी होते हैं। क्योंकि मांस उनका आहार है ही नहीं। मांस जङ्गली दुष्ट पशुओं का तथा निशाचरों का आहार है। गाय, घोड़ा, बैल, बन्दर मांस को छू तक नहीं सकते। पर वाह रे मनुष्य! जंगली नीच जानवरों से भी नीच हो गया है। मांसाहारी पुरुष सदा चंचल क्रोधी व कामी बना रहता है और इस बात का पता शेर, तेन्दुआ, चीता इत्यादि मांसाहारी पशुओं की तरफ़ देखने से फ़ौरन लग जाता है। वे पशु पिञ्जड़े में हर वक्त इधर-उधर चक्कर लगाया करते हैं। और लोगों की तरफ चंचल व क्रूर दृष्टि से देखा करते हैं। परन्तु वही शाकाहारी गाय से लेकर हाथी तक को देखिये कितने शान्त और निर्विकारी होते हैं। मांसाहारी पुरुष का ब्रह्मचारी होना मुश्किल तो है ही, परन्तु असम्भव भी है। अपवाद (exception) को लेना मूर्खता है। अतः जिन्हें ब्रह्मचारी और सदाचारी बनना हो, उन्हें चाहिये कि वे मांसाहार को सर्वथा एकदम त्याग दें।

सच्चा आहार:—पहले यह कह आये हैं कि भोजन और बुद्धि का परस्पर बड़ा ही घनिष्ट संबन्ध है। सात्विक आहार से बुद्धि भी निस्सन्देह सात्विक ही बन जाती है। पर हाँ, भोजन के समय उच्च, पवित्र शान्त और ब्रह्मचर्य-विषयक विचार अवश्य ही करने चाहिये। क्योंकि उच्च और निर्मल विचार ही आत्मा का

बृहन्नारदीये।

श्लोक—न नामसदृशं ज्ञानं न नामसदृशं व्रतम्।
न नामसदृशं ध्यानं न नामसदृशं फलम्॥ १॥
न नामसदृशं कर्म न नामसदृशं तपः।
न नामसदृशः शंभुर्न नामसदृशो यमः॥ २॥
न नामसदृशी मुक्तिर्न नामसदृशः प्रभुः।
ये गृह्णंति हरेर्नाम त एवाजिततद्गुणाः॥

भाषार्थ—न नामसदृश ज्ञानहै न ध्यानहै न नामसदृश कोई धर्महै न नाम-सदृश कोई कर्महै जो नाम लेताहै उसकी प्रशंसा क्या करें फिर नामका माहात्म्य गुण शिवजीने जानाहै कौन नाम वासुदेव।

भागवते प्रथम०अ०।

श्लोक—वासुदेवपरा वेदा वासुदेवपरा मखाः।
वासुदेवपरा योगा वासुदेवपराः क्रियाः॥
वासुदेवपरं ज्ञानं वासुदेवपरं तपः।
वासुदेवपरो धर्मो वासुदेवपरा गतिः॥

भाषार्थ—शुकदेवजी कहैहैं कि वेद वासुदेवपर हैं और वासुदेवही पर यज्ञ और योग हैं वही मूर्ति सर्व क्रिया ज्ञान तप भी है वासुदेवसम कोई धर्म नहीं वासुदेवके प्राप्ति विना गति नहीं सो वासुदेव सबमें व्याप्तहै।

पद्मपुराणे।

श्लोक—वासनाद्वासुदेवस्य वासितं भुवनत्रयम्।
सर्वांतरनिवासी च वासुदेव नमोस्तु ते॥

भाषार्थ—वासुदेव यह नाम जिसका सोई प्रभु चित् अचित् वासकरता जैसे काष्ठमें अग्नि पुष्पमें सुगंध तिलमें तेल दूधमें माखन या प्रकारसों अखिल लोकमें व्याप्तहै ऐसे वासुदेवकी भक्ति सर्वोपरिहै सो भक्ति भगवत्को प्रियहै।

से तुम भी लक्ष्मीपति अवश्य बन जाओगे अर्थात् धन आप से आप तुम्हारे चरणों की सेवा करेगा; क्योंकि "ध्याने ध्याने तद्रूपता" ऐसा ही प्रकृति का सिद्धान्त है। अतः जैसे जैसे तुम अपने को बनाना चाहते हो, वैसे ही अथवा जिस दुर्गुण को या आदत को आप हटाना चाहते हो, उसके ठीक ठीक विरुद्ध विचार श्रद्धा, और शान्ति के साथ करो। निस्सन्देह तुम वैसे ही बन जाओगे। याद रक्खो, जैसे आपकी श्रद्धा और शान्ति होगी वैसे ही आपको कम ज्यादा और जल्दी देरी में फल मिलेगा क्योंकि श्रद्धा और शान्ति ही संपूर्ण सौभाग्य और ईश्वरत्व की कुंजी है और भगवान श्रीकृष्ण का भी यही सिद्धान्त* है।

मनुष्य के जैसे विचार होते हैं वैसा ही वातावरण atmosphere उसके बाहर-भीतर चहुँओर निर्माण होता है और फिर "योग्यं योग्येन युंज्यते।" अथवा Like attracts like यानी समान समान की ओर खिंचता है। इस न्याय से फिर वैसे ही विचार के पुरुष हमारे निकट खिंच आते हैं, अथवा हम उनके निकट खिंच जाते हैं, और हमारे विचारानुकूल ही अनेक शुभाशुभ घटनायें निर्माण होती हैं, जिनसे कि हमारा अभीष्ट या अनिष्ट आपसे आप सिद्ध होता है। आज जिस स्थिति में हम लोग हैं उस स्थिति के निर्माता खुद हम ही हैं और आहार, विचार व आचार के प्रभाव से हम इस स्थिति के बाहर भी निकल सकते हैं और जैसी चाहें वैसी उन्नति कर सकते हैं। इसी स्थिति में पड़े रहने के लिये मनुष्य का जीवन नहीं है। वस्तुतः परमपद प्राप्त करना ही

*श्रद्धामयो यं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः॥ गीता १७—३॥

भाषार्थ--महत्तत्त्वोंका नाश होजाता यावत्ब्रह्मांड ये सब नाश होजातेहैं जलके द्वारा सो जलवायुके द्वारा इनका कारण ब्रह्माभी नाश होजाताहै परन्तु भगवान्‌कहैहैं कि मेरी शरण आये मेरे भक्तका कभी नाश नहींहै ।

श्लोक-"यदि वातादिदोषेण मद्भक्तो मां च विस्मरेत् ।
तर्हि स्मराम्यहं भक्तं स याति परमां गतिम् ॥ "

गीतायाम् ।

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥
यंयं वापिस्मरन्भावं त्यजत्यंते कलेवरम् ।
तन्तमेवैतिकौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥

भाषार्थ—हेशिष्य ! भगवत् कहैहैं कि हे अर्जुन।यदि मेरा भक्त अन्तकालमें वातादि याने सन्निपातरोगमें हमें भूलजावे तो मैं नहीं भूलता और उसे परागति याने अपना नित्य वृन्दावन प्रकृति परे तहांका वास अपने निकट रखताहूं अंन्तकालमें मुझे जैसा स्मरण वही भावसे उसे मुक्त करताहूँ भक्तके मैं संग सदा रहताहूं प्रमाण ।

वाराहपुराणे ।

श्लोक—मद्भक्ता यत्र गच्छंति तत्र गच्छामि पार्थिव ।
भक्तानामनुगच्छंति मुक्तयः श्रुतिभिः सह ॥

भाषार्थ—मेरा भक्त जहां जहां जाता तहां तहां मैं वाके पीछे फिरूं हूं मेरा मन भक्तके साथमें मैं भक्तके अधीन हूँ मेरा भक्त मेरा प्राण मैं भक्तोंका सर्वस्व हों पुनः ।

बृहन्नारदीये ।

श्लोक—भक्तसंगे भ्रमत्येव च्छायेव सततं हरिः ।
चक्रेण रक्षते भक्तान्भक्त्या भक्तजनप्रियः ॥

नष्ट हो, आलस छाती पर जबरदस्ती सवार होता है और मनुष्य को पाप कर्म में प्रवृत्त करता है। (६) कभी हलक तक ठूंस ठूंस न खाओ; उससे बरबाद हो जाओगे। (७) थकने पर तत्काल भोजन न करना चाहिये। (८) भोजन के वाद शारीरिक व मानसिक परिश्रम एक घण्टा तक कदापि न करना चाहिये। एक घण्टा —कम से कम आध घण्टा तक आराम करो, नहीं तो रोगग्रस्त बन जल्दी ही मरना पड़ेगा। (९) भोजन के समय सदा शान्त, पवित्र व ऊँचे विचार रक्खो। चिड़चिड़ापन से अन्न हज़म नहीं होता। क्रोध से अन्न ज़हर बन जाता है; अतः भोजन के समय हमेशा शांत रहो शान्ति के हेतु मौन धारण करो। (१०) नमक मिर्च, मसाला, पूड़ी, कचौड़ी, मिठाई, खटाई, मद्य, मांस, चाय, काफी वगैरह सर्वथा त्याग दो; क्योंकि इनसे मन व इन्द्रियां अत्यन्त चंचल बन जाती हैं। ऐसा पुरुष वीर्य को नहीं रोक सकता। (११) भोजन के समय पानी न पीना चाहिये; क्योंकि वैसा करना प्रकृति के खिलाफ़ है। भोजन के एक घण्टा वाद पानी पीना अच्छा है। (१२) भोजन के पहले हाथ, पैर और मुँह को पानी से पूरे तौर से स्वच्छ धो डालो और नाखून साफ रखो; क्योंकि उनमें ज़हर होता है। (१३) भोजन नियमित समय पर किया करो और फिर बीच में कुछ भी न खाओ (१४) राह चलते, खड़े रहते व लेटे हुए भोजन करना सर्वथा अनुचित है। (१५) प्रातःकाल जल पान अर्थात् कलेवा करना अच्छा नहीं है। (१६) भोजन की जगह पवित्र व प्रकाशमय होनी चाहिये। गन्दगी से जिन्दगी जल्दी बरबाद होती है, इस बात को सदा सर्वदा ध्यान में रक्खो। (१७) भोजन के बाद "शतपद" अर्थात् सौ कदम इधर-उधर टहलना

श्लोक—विषयान्ध्यायतश्चित्तं विषयेषु विषज्जते ।
मामनुस्मरतश्चित्तं मय्येव प्रविलीयते ॥

भाषार्थ—जो पुरुष विषय वासनाद्वारा भजताहै सो विषययुक्तस्वरूप इंद्रादिकलोकोंको प्राप्त होता है जो परम पुरुष जान एकाग्रचित्तसे भजताहै वो जीवन्मुक्त होताहै ।

पद्मपुराणे ।

श्लोक—प्रतिमामंत्रतीर्थेषु भेषजे वैष्णवे गुरौ ।
यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी ॥

भाषार्थ—जो पुरुष प्रतिमा याने मूर्ति उन्हें पाषाण या धातुकी जानताहै और मंत्रको अक्षर तीर्थ यथा यमुनाजी इन्हें जल जाने वैष्णव वा गुरु तिन्हें मनुष्यकरके जानते हैं उन्हें जैसी भावना तैसी फलतीहै जो हरिको जैसे माने ताको प्रभु तैसे जाने प्रमाण ।

भागवते दशमे ।

श्लोक—मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः ॥
मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनां
वृष्णीनां परदेवतेतिविदितो रंगं गतः साग्रजः ॥

भाषार्थ—अब इस श्लोकका आशय यह दिखातेहैं जो जिसप्रकार कर भगवत्को जानताहै ताको तैसे ही दिखाई देतेहैं सो भागवतमें कथाहै जब श्रीकृष्ण महाराज मथुराको अक्रूरके संग गये कंसके समीप गये सो कहैहैं कि मल्लतो महापराक्रमी देखते मथुरावासिनी स्त्री अपूर्व मोहिनी मूर्ति देखतीं गोप स्वजन भाई बंधु ग्वालबाल सखाकर जानते नंदरायको वही पुत्रवत् दिखाई देताथा ज्ञानीपुरुषनको विराट्स्वरूप दीखता योगीजनोंको परमतत्त्वरूप दीखते यादव अपना कुलपुत्रवत् मानते भक्तजन अपना सर्वस्व इष्ट मानते जिसकी जैसी भावना वैसेही दीखे ऐसेही श्रीरघुनंदनजी महाराज मिथिला

ऊपर के दाँत संलग्न करने से पानी में भी प्राणशक्ति पूरी तरह से खींची जा सकती है; पानी भी थोड़ा थोड़ा पीने में आता है और दाँत भी मज़बूत हो जाते हैं; तथा पानी में का कूड़ा करकट भी पेट में नहीं जाने पाता। एक मनुष्य के पेट में, दांत संलग्न न करने के कारण एक साँप का बच्चा तक चला गया था फिर भैंस के मट्ठा से (उसमें मोहरी मिलाकर और पिला करके) क़ै करायी गई तब वह निकला। अतः सावधान रहो। (५) प्यास को कभी न रोकना चाहिये; क्योंकि उससे जीवनशक्ति का भयंकर रूप से नाश होता है और मनुष्य अल्पायु बनता है। (६) प्यास की तृप्ति पानी ही से करो न कि सोडा-लेमन और बरफ़-शराब से। याद रक्खो, प्रकृति के विरुद्ध चलने से कोई सात जन्म में भी सुखी नहीं हो सकता। (७) भोजन के समय बिलकुल पानी न पीना चाहिये क्योंकि वैसा करना प्रकृति के सर्वथा विरुद्ध है। कोई भी बुद्धिमान पुरुष हमें चींटी से लेकर हाथी तक ऐसा कोई भी प्राणी बतला दे, जो कि भोजन के समय पानी पीता हो। भोजन के साथ पानी न पीने से बहुत लाभ है हाज़मा दुरुस्त होता है; शौच साफ़ होता है; बढ़ा हुआ पेट घटता है; गले की जलन नष्ट होती है और भोजन भी कम लगता है अर्थात् पेटूपन के छूटने से हम अनेक रोगों से भी अनायास छूट जाते हैं (८) भोजन के आधा या पाव घंटा पहिले एक गिलास पानी पी लेने से भोजन के समय तुम्हें प्यास नहीं सतावेगी। उससे पेटूपन का भी नाश होता है और खोटी भूख नष्ट होकर सच्ची लगने लगती है। भोजन के साथ पानी न पीने का अभ्यास जाड़े के दिनों से सुखपूर्वक शुरू किया जा सकता है। (९) शुष्क यानी जिस भोजन में बिल्कुल पानी नहीं होता ऐसा

स्मरणभक्तिमें प्रह्लाद ।

श्लोक-गोकोटिदानंग्रहणेषुकाशीप्रयागगंगायुतकल्पवासः ॥
यज्ञायते मेरुसुवर्णदानं गोविंदनामस्मरणेनतुल्यम् ॥

भाषार्थ-कोटि गोदान करे ग्रहणमें काशीस्थान एकहजार वर्ष कल्प वास प्रयागमें करे और जो सवर्णाचलको दान करै सो सब एकगोविंदके नामस्मरणके बराबर नहीं है सो ताके अधिकारी प्रह्लादजी भये नामका प्रताप प्रमाण ।

श्लोक-कृष्णकृष्णेतिकृष्णेति यो मां स्मरति नित्यशः ।
जलं भित्त्वा यथा पद्मं नरकादुद्धराम्यहम् ॥ १ ॥
हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम् ॥
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

पुनः-मृषागिरस्तद्व्यसतीरसत्कथा न कथ्यते यद्भगवानधोक्षजः ॥
तदेव सत्यं तदुहैव मंगलं तदेव पुण्यं भगवद्गुणोदयम् ॥

भाषार्थ-देखो भगवत्का नाम सर्वोपरि विनाश्रम चलते फिरते जो लेताहै उसे संसार बाधा नहीं करता । जैसे पुरैन जलमें परउस्में नहीं व्यापता नामके प्रतापते गजग्राहसे वचा नामके प्रतापसे अजामिल तरा नामके प्रतापसे द्रौपदीकी लज्जा रही प्रमाण ।

श्लोक-शंखचक्रगदापाणे द्वारकानिलयाच्युत ।
गोविंद पुंडरीकाक्ष रक्ष मां शरणागताम् ॥

भाषार्थ-देखो द्रोपदीजी नाम ले पुकारी हे गोविंद ! हे द्वारकानाथ ! हे शंखचक्रके धारण करनेवाले! भक्तरक्षक! हम शरणमें हैं इतनेते चीर बढाहै ।

पादसेवनमें श्रीलक्ष्मीजी ।

श्लोक-कदा पुनः शंखरथांगकल्पकध्वजारविंदांकुशवज्रलक्षणम् ।
त्रिविक्रम त्वच्चरणांबुजद्वयं मदीयमूर्द्धानमलं करिष्यति ॥

डालंकर उसे पी लो। फिर चित लेट जाओ और नाभी के चारों तरफ़ से पेट को रगड़ो। देखो आठ दिन ही में पाखाना साफ होने लगेगा; बवासीर की बीमारी कम हो जायगी; जठर रोग, कर्ण रोग, सिर दर्द गला और छाती के रोग, नेत्र रोग, कोढ़, कमर का दर्द, सूजन आदि असंख्य विकार शनैः शनैः नष्ट हो जायेंगे। अवश्य अनुभव कीजिये। परन्तु यह उपाय भी अप्राकृतिक है; फिर इसे छोड़ देना चाहिये। (१५) एनिमा का उपाय भी कब्ज़ियत के लिये सर्वोत्कृष्ट होने पर भी अप्राकृतिक है। अतः एनिमा की आदत न लगाओ। एनिमा का उपयोग कभी कभी कचित् किया करो—एनिमा का रोज़ उपयोग करने से आतें सदा के लिये कमजोर बन जाती हैं। अतएव सावधान! (१६) जल पीते वक्त "इस जल से मुझ में सुख, शान्ति, आरोग्य, ब्रह्मचर्य्य, तेज इत्यादि प्रवेश कर रहे हैं और मैं पूर्ण आरोग्य हो रहा हूँ।" इस प्रकार के संकल्प व आत्म-कथन अवश्य किया करो। क्योंकि जैसे तुम जल पीते (अथवा सभी समय) संकल्प करोगे ठीक वैसे ही भाव तुम्हारे रोम रोम में घुस जायगे और तुम निःसन्देह वैसे ही बन जावोगे, ऐसा हम प्रतिज्ञा-पूर्वक कह सकते हैं।

सखाभावग्वालवाल ।

योंतौ सखा अर्जुन उद्धव हैं परंतु सखानके भेदहैं एक तो नर्मसखा यथा अर्जुन जैसे मित्र प्रियसखा उद्धव जिनसे गुप्तबात भी कहैहैं हरि अर्जुनके सखा प्रमाण ।

श्लोक–सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हेकृष्ण हेयादव हेसखेति ।

भाषार्थ–श्रीकृष्णवाक्यसे भी प्रमाण है कि अर्जुन सखा थे ।

श्लोक–नर्माण्युदाररुचिरस्मितशोभितानि ।
हे पार्थ हेऽर्जुन सखे कुरुनंदनेति ॥
संजल्पितानि नरदेव हृदिस्पृशानि ।
स्मर्तुर्लुठन्ति हृदयं मम माधवस्य ॥

भाषार्थ–ऊपरके श्लोकका आशय श्रीकृष्ण महाराज भी अर्जुनको हेसखे कुरुनन्दन कहाहै अब उद्धवजीको सखाभाव कहे सो अतिप्रिय एकांती सखा हैं ।

श्लोक–वृष्णीनां प्रवरो मन्त्री कृष्णस्य दयितः सखा । इति ।
पुनः–शय्यासनाटनस्थानस्नानक्रीडाशनादिषु ॥
कथं त्वां प्रियमात्मानं वयं भक्तास्त्यजेमहि ॥

भाषार्थ–देखो भक्तिका प्रभाव उद्धवजी सखा प्रिय सब जगह श्रीकृष्णके संग रहेहैं क्या एकांतकी कहीं भी मनाही नहीं परमप्रियहै सोई वाक्य ठाकुरजीने निजमुख ते कहाहै ।

श्लोक–नोद्धवोण्वपि मन्न्यूनो यद्गुणैर्नार्दितः प्रभुः । इति ।
पुनः–न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शंकरः ।
न च संकर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान् ॥

भाषार्थ–अब ये ऊपर कह आये सो तौ सखाहैं ही परंतु सखाभावघटित ग्वालवालनपै है सो प्रमाण ।

हैं। परन्तु ऐसे लोग कैसे मानेंगे? क्षयी वन कर उन्हें जल्दी मरना है न?

जापान में यदि वीस वरस का वालक चुरुट, सिगरेट, वीड़ी या तम्बाकू पीते देखा जाय तो फ़ौरन उसके माता पिता पर जुर्माना होता है। हे प्रभो! ऐसा सामाजिक प्रवन्ध भारत में कव होगा? और हम भी अपने भाई जापानियों की तरह शूर, वीर, साहसी, उद्योगी और ब्रह्मचारी कव वनेंगे?

हे प्रभो आनन्ददाता ज्ञान हमको दीजिये।
शीघ्र सारे दुर्गुणों को दूर हमसे कीजिये॥
लीजिये हमको शरण में हम सदाचारी वने।
ब्रह्मचारी, धर्मरक्षक, वीर-व्रतधारी वने॥

"दो वार मल-मूत्र-त्याग"

नियम नवाँ:—

वक्तव्य:—शौच को दो मरतवे जाने की आदत डालो। यदि दूसरी वार दिशा न मालूम हो तव भी जाओ। कुछ दिन के वाद आप से आप दिशा होने लगेगा। अनेक रोगों की जड़ मलवद्धता ही है। और मल वद्धता का एक मात्र असली कारण वीर्य का नाश ही है। "धातु-क्षतात् श्रुतेरक्तेमन्दः संजायतेऽनलः।" वीर्यनाश से रक्त कमज़ोर, निकम्मा और नष्ट होकर अनल अर्थात् जठराग्नि मन्द पड़ जाती है। आँतों के दुर्वल होने पर फिर पाखाना भी साफ़ नहीं होता है।

भागवते दशमे।

श्लोक–कृष्णस्यासीत्सखा कश्चिद्ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तमः ॥ १ ॥
नतु ब्रह्मन्भगवतः सखा साक्षाच्छ्रियः पतेः ॥

भाषार्थ–सो कहे कि देखो श्रीकृष्ण रुक्मिणी ताके पति सो सुदामाको देख करुणानिधि कैसे मिले कैसो सत्कार कियो सो कहैहैं कौनविधिसों मिले

श्लोक–तं विलोक्याच्युतो दूरात्प्रियापर्यंकमास्थितः।
सहसोत्थाय चाभ्येत्य दोर्भ्यां प्रत्यग्रहीन्मुदा ॥
सख्युः प्रियस्य विप्रर्षेरंगसंगातिनिर्वृतः।
प्रीतो व्यमुंचदब्बिंदून्नेत्राभ्यां पुष्करेक्षणः ॥
अथोपवेश्य पर्यंके स्वयं सख्युः समर्हणम्।
उपहृत्यावनिज्यास्य पादौ पादावनेजनीः ॥
अग्रहीच्छिरसा राजन्भगवाँल्लोकपावनः ॥
कुचैलं मलिनं क्षामं द्विजं धमनिसंततम्।
देवी पर्यचरच्छैब्या चामरव्यजनेन वै ॥
योसौ त्रिलोकगुरुणा श्रीनिवासेन संभृतः।
पर्यंकस्थां श्रियं हित्वा परिष्वक्तोऽग्रजो यथा ॥

भाषार्थ–शुकदेवजी कहैहैं कि हे राजन्! श्रीकृष्ण पर्यंक (सेज)में विराजे रुक्मिणी गोड दाबतीथीं ताही समय सुदामा पहुंचे सो तिन्हें देख दीनबंधु उठ छातीसों लगाय दिव्यसिंहासनपै बैठाय परातमें अपनेहाथसों पगधोय नानाप्रकारसे सेवाकर भोजनकराए सुन्दर पर्यंकपै परमथके जान आप गोड दाबे और पूंछी कि भावीने हमे कछ दियो है तब लज्जा कर तंडुलदिये सो ले आप मुखमें दो फंका लगाये जहां तीसराका विचार करा. कि रुक्मिणीने हाथपकड कहा कि बस अखंड धन ऐश्वर्य दे विश्वकर्माद्वारा सुदामानामकी पुरी इंद्रलोकसम रचायदी तबतक सुदामा द्वारकामेंही था हरिसे बिदा हो अपन यहां आय धन ऐश्वर्य देख भगवत्कृपा जान सुदामा महाज्ञानी था

और इन्द्रियाँ क्षुब्ध होने पर फिर मनुष्य रोगी होने पर भी बड़ा कामी बन जाता है। मल-मूत्र को और वायु को किसी काम में फँस कर अथवा मोहवश वा लज्जा के कारण, जाड़े के डर से व किसी कारण रोकना मानों अपने स्वास्थ्य पर कुल्हाड़ी मारना है। ऐसा करना ब्रह्मचर्य के लिये महान हानिकर है। अतः ब्रह्मचर्य और स्वास्थ्य-रक्षा के लिये सुबह-शाम दो मरतबे "नियमित समय पर" मल मूत्र का त्याग करना परम आवश्यक है। शाम को दिशा हो आने से सुबह का पाखाना बड़ा साफ़ होता है। मल के निकल जाने पर तन और मन दोनों निर्मल होते हैं।

दिशा के समय हरगिज़ काँखो मत; उससे वीर्य बाहर निकल पड़ने की विशेष संभावना है और बहुमूत्रता का रोग होता है। कब्ज़ की बीमारी अधिक हो तो पानी का यथेष्ट उपयोग करो। एक-दो आँवला खाकर पानी पी लो, पेट को रगड़ो और आँतों को "मल त्याग करने की" सोते वक्त आज्ञा दे रक्खो; सब काम दुरुस्त हो जायगा। इन सब का स्वयं अनुभव करके देखिये।

"इन्द्रिय-स्नान"

नियम दशवाँ:—

वक्तव्य—जननेन्द्रिय को बिना कारण कदापि हाथ न लगाओ और न उसकी ओर देखो भी, क्योंकि अशुचिस्थान का स्पर्श और चिन्ता न करने से काम-रिपु कभी जागृत नहीं हो सकता। भाव सदैव ऊँचे व पवित्र रक्खो। शौच के समय इन्द्रिय को स्वच्छता

भागवते।

श्लोक-तत्सर्वं भक्तियोगेन मद्भक्तो लभतेंजसा।
स्वर्गापवर्गौ स कथं लब्ध्वा मद्धाम वांछति ॥

भाषार्थ--हे उद्धव ! मेरे भक्तनको स्वर्गकी बात कहा मेरा धाम तिनको सुलभहै और मेरा मिलना सुलभ है मेरे भक्त कैसे होयँ कैसा प्रेमका स्वरूपहै सो सुनो।

श्लोकः--अथासक्तस्तथाभावस्ततःप्रेमाभ्युदंचति।
साधकानामिदं प्रेमप्रादुर्भावो यथा क्रमात् ॥

पुनः--वाग्गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं हसत्यभीक्ष्णं
रुदति क्वचिच्च ॥ विलज्जउद्गायति नृत्यते च
मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति।

भाषार्थ--जब जिज्ञासु भक्तिमें आसक्त होताहै तब ताके विषय प्रेम प्रगट होताहै तब ताकी दशा सुनो. भगवत्चरित्र गावे कबहूं गद्गद होय कबहूं रोमांच हो आवें यह जीवन्मुक्त दशा तुरीय अवस्था वेदांती कहतेहैं जिसमें देहाध्यासादिक विस्मृत होयँ।

श्लोक--स वै मनः कृष्णपदारविंदयोर्वचांसि वैकुंठगुणानुवर्णने।
करौ हरेर्मंदिरमार्जनादिषु श्रुतीं चकाराच्युतसत्कथोदये ॥

पुनः--मुकुंदलिंगालयदर्शने दृशौ तद्भृत्यगात्रस्पर्शांगसंगमम्।
घ्राणंच तत्पादसरोजसौरभे श्रीमत्तुलस्या रसना तदर्पिते ॥

भाषार्थ--जब यह मन श्रीकृष्णके पादारविंदमें लगताहै तब यह वाक्य करके श्रीकृष्णके गुण गाता हाथसे भगवत्मंदिरमें झाडू देता है श्रुति भी कहैहै कि जापै भगवत्कृपा होय ताकी ऐसी बुद्धि होय पुनः कहे किसी महानुभावकी वाक्य है ॥

पेशाव के समय गिलास या लोटा में पानी अवश्य ले जाया करो। वहुत ही उपकार होगा। शर्म से अपना सत्यानाश न कर लो। वाहर घूमने जाते समय हर वक्त एक रुमाल या अँगोछा साथ में रक्खो, ताकि उसे ही पानी में भिगो कर काम में ला सको। दिशा के समय पानी वड़े लोटे में ले जाओ। कई सज्जन तो विना लोटा में पानी लिये ही दिशा मैदान जाते हैं! यह क्या सभ्यता, ज्ञान और सच्चरित्रता के लक्षण हैं। यह कैसा घोर पशुपन है? भाइयो, मनुष्य वनो! मनुष्य वनो! दिशा पेशाव के वाद संपूर्ण हाथ पैर (अधूड़े नहीं) ठंडे जल से स्वच्छ धो डालने चाहिये, इससे और भी लाभ होता है।

"नियमित व्यायाम"

नियम ग्यारहवाँ:—

"प्रायेण श्रीमतां लोके भोक्तुं शक्तिर्न विद्यते।
काष्ठान्यपि हि जीर्यन्ते दरिद्राणां च सर्वशः॥"

— महाभारत।

"धनी लोगा को सुपक्व अन्न भी पचाने की प्रायः शक्ति नहीं होती; परन्तु ग़रीव लोगों को काष्ठ तक पच जाते हैं"।

दो लड़के थे—एक ग़रीव का और दूसरा धनी का। धनी के लड़के ने ग़रीव से पूछा, "भाई, तू ग़रीव होने पर भी इतना सशक्त

जामें सब अवतारनके मूलव्यूह क्षीरसागरनिवासी तिनहूके मूल श्रीकृष्ण भगवान् तामें प्रमाण ।

नारदपुराणे।

श्लोक–वैकुंठेतिपरेलोकेश्रियासार्द्धंजगत्पतिः ।
आस्तेविष्णुरचिंत्यात्माभक्तैर्भागवतैस्सह ॥
एषनारायणःश्रीमान्क्षीरार्णवनिकेतनः ।
नागपर्यंकमुत्सृज्यह्यागतोमथुरांपुरीम् ॥

भाषार्थ–हे शिष्य ! जेते अवतार भगवत्केहैं ते क्षीरसागरनिवासी सो शेषजी पर शयन व्यह कहातेहैं तिनतेहीहैं सो तिनकी उत्पत्ति सुनो । वैकुंठसे भी परे दूर वह लोक जहांको मुक्त अनन्य भक्तजन प्राप्त होते सोई गोलोकमें मथुरापुरीमें श्रीनित्यविहारीजी विराजते तिनके अंशते विष्णुनारायण अनेक ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति करैहैं ।

भागवते ।

श्लोक–एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान्स्वयम् ।
इंद्रादिव्याकुलं लोके मृडयंतियुगेयुगे ॥

भाषार्थ–सो और जेते अवतार होतेहैं सो व्यूह याने क्षीरसागरनिवासी भगवानते और परमपुरुष सच्चिदानंद श्रीगोलोकनाथ स्वयं श्रीकृष्णनंदनंदन और वसुदेवनंदनका अवतार वैकुंठनाथसे है प्रमाण ।

पद्मपुराणे ।

श्लोक–सात्त्वतां स्थानमूर्द्धन्यं विष्णोरत्यंतवल्लभम् ।
नित्यं वृन्दावनं नाम ब्रह्मांडोपरि संस्थितम् ॥
पूर्णब्रह्म सुखैश्वर्यं नित्यमानंदमव्ययम् ।
वैकुण्ठादितदंशाशस्स्वयंवृन्दावनं भुवि ॥
गोलोकैश्वर्य्ययत्किंचिद्गोलोकेतत्प्रतिष्ठितम् ।
वैकुण्ठादिवैभवंतुद्वारकायांप्रकाशयेत ॥

बगीचे में, खेत में या घर ही पर परिश्रम करने से या राजमंत्री मिस्टर ग्लैडस्टन की तरह कुल्हाड़ी लेकर स्वयं अपने हाथ से घर ही पर लकड़ी चीरने से मनुष्य बहुत-कुछ निरोग और सुखी बन सकता है; परन्तु प्रत्येक अवयव को गठीला और सुन्दर बनाने के लिये ख़ास प्रकार की कसरत ही करनी चाहिये। कसरत को ग़रीब, धनी सभी कर सकते हैं। हमारी मर्ज़ी हो, चाहे न हो किन्तु व्यायाम हमको अवश्य ही करना होगा; न करेंगे तो हमें रोगी बनना होगा और अपनी जीवन-यात्रा अकाल ही में समाप्त करनी होगी। व्यायाम से मस्तिष्क के और सब प्रकार के काम करने की प्रचण्ड शक्ति प्राप्त होती है। अतः अस्थि-पंजर बने हुये पुस्तक कीटों को इस व्यायामरूपी अमृत-संजीवनी का अवश्य सेवन करना चाहिये, परम उद्धार होगा। व्यायाम से मनुष्य को निस्संदेह चिरन्तन आरोग्य प्राप्त होता है। व्यायाम से आयु की प्रचण्ड वृद्धि होती है। नागपुर में (सन् ११२१ में) लेखक ने स्वयं १५५ वर्ष का पहलवान देखा है। अभी (१९२७) में वह मौजूद है। उसका एक भी दाँत नहीं टूटा है वह "गुजर" नामक एक रईस के यहाँ रहता है। स्वयं पहलवान बड़ा ही सदाचारी और ब्रह्मचारी है।

जिसे ब्रह्मचर्य पालन करना है उसे रोज़ नियमपूर्वक व्यायाम करना अत्यन्त आवश्यक है। व्यायाम से मुँह मोड़ने वाला पुरुष कभी निर्विकार और सच्चरित्र नहीं बन सकता। व्यायाम से मन और तन दोनों निरोग, निर्विकार और पुष्ट बन जाते हैं। औषधियों से रोग और दुर्बलता को काटने की अपेक्षा कसरत द्वारा शरीर सुदृढ़ बनाकर उन्हें हटाना कहीं अधिक निर्दोष और

द्विभुजो मुरलीहस्तो निवीतो वनमालया ॥
मयूरपिच्छसन्नद्धः सद्रत्नमुकुटावृतः ।
पीतांबरधरो मीनाकारकुंडलसंयुतः ॥
मथुरां त्वं समागच्छ बलेनाक्रूरकेण च ।
कंसादीनसुरान्हत्वा संविवाह्य नृपात्मजाः ॥
भुवो भारं समाहृत्य यदुभिः स्वालयं व्रज ।
इति विष्णुसमाज्ञाय श्रीकृष्णो राधया सह ॥

भाषार्थ—जब अक्रूरजी श्रीकृष्णको गोकुलते मथुराको ले चले तब मार्गमें आपतो श्रीयमुनाजी स्नान करने लगे और यहां श्रीनन्दनंदन अपनेते वसुदेवनंदनको जो स्वरूप जो वसुदेवजी पहुँचाय आये थे सो अंशस्वरूप अलग कर आप बोले कि हे विष्णु! तुम चारभुजा छिपायके दो भुजा करो और मोरपंखका मुकुट और वनमाल पीतांबर धारणकर मुरली ले संगमें बलदेवजी और अक्रूरजीको ले मथुराजाय कंसको मार राजाओंकी कन्या विवाह बंदिशकाट भूमिका भार उतार तुम्हारे परिकर जो यदुवंशी तिन्हें ले तुम्हारा जो वैकुंठ ताको चलेजाना। व्यासजी कहैहैं कि याप्रकार श्रीनंदनंदन वसुदेव नंदनको मथुरा पठाय आप श्रीजीसहित श्रीवृन्दावनमें विहारकरने लगे। इति हेशिष्य! देख सोई बात श्रीराधावल्लभसंप्रदायके आचार्यवर्य श्रीगोस्वामी रसिकेंदुने श्रीहितहरिवंशजी अपने ग्रंथ। राधासुधानिधिमें कहाहै सो सुनो।

श्रीराधासुधानिधौ ।

श्लोक—दृष्ट्वा क्वापि च केशवो व्रजवधूमादाय कांचिद्गतः ।
सर्वा एव विमोहिताः सखि वयं सोऽन्वेषणीयो यदि ॥
द्वौ द्वौ गच्छतमित्युदीर्य सहसा राधां गृहीत्वा करे ।
गोपीवेषधरो निकुंजभवनं प्राप्तो हरिः पातु वः ॥

नारदपुराणे ।

श्लोक—जानामि नैव गतिमस्य श्रुतिः पुराण-
ब्रह्मेश्वरादय इहासत वन्दने हि ॥ इत्यादि ॥

करना होगा। क्या योरोप, क्या अमेरिका, सभी जगह "दौड़" सब से श्रेष्ठ व्यायाम समझा जाता है, इसलिये हलकारों की तरह कम से कम एक मील की दौड़ लगाना परम उपकारी होगा। एक समय कसरत और दूसरे समय दौड़, इस प्रकार व्यायाम करने से बड़ा ही अच्छा होगा। मन और तन सदा सर्वदा मस्त व शान्त बने रहेंगे। लेखक का ऐसा निजी अनुभव है।

स्वच्छ जल-वायु सेवन:—रोज़ बस्ती के बाहर शुद्ध हवा में टहलने के लिये जाना बहुत ही उत्तम है। जिससे कसरत न बन पड़ती हो ऐसे बहुत फूले हुए, बहुत दुर्बल, बहुत रोगी क्षयी मनुष्य को टहलने से बढ़कर सुखकर तथा आरोग्यवर्धक दूसरा व्यायाम ही नहीं है। ऐसे मनुष्यों को कम से कम एक मील और स्वस्थ मनुष्य को कम से कम ३ मील टहलना चाहिये। और जहां तक हो बाहरी कूप का जल दिन भर में एक मरतबे तो अवश्य ही पान करना चाहिये; क्योंकि शुद्ध वायु, शुद्ध जल, शुद्ध भूमि, विपुल प्रकाश और विपुल आकाश ये ही प्रकृति की पांच दिव्य औषधियां हैं। यही प्रकृति के पंचामृत हैं। इसी पंचामृत का यथेष्ट सेवन करके ऋषि महात्मा इतने अजर, अमर और बलिष्ट हुए थे। बिना प्रकृति के इस अमूल्य पंचामृत का सेवन किये, कोई भी पुरुष सहस्र युगपर्यन्त भी सुखी और उन्नत नहीं हो सकता।

व्यायाम के शास्त्रीय नियम—(१) व्यायाम की जगह शुद्ध, हवादार व प्रकाशमय हो। संकुचित या गन्दी कोठरी न हो। संकुचित व रद्दी जगह में व्यायाम करने वाले पहलवान जल्दी मरते हैं। परन्तु शुद्ध हवादार स्थान में कसरत करने वाले अत्यन्त

ऋग्वेदे आश्वलायनीयशाखायाम् ।

"राधानायतेगीर्वांहोवरिजस्यपते विभूतिरस्तनृतः" पुनः "राधायांमाधवोदेवोमाधवेनलवराधिका विभ्राजतेजनस्यविस्त्रशिपेर्यवः" पुनः—

यजुर्वेदे माध्यंदिनीयशाखायाम् ।

"ॐश्वात्रासवुत्रान्तुरेराधोगुरूतोअमृतस्यपत्निनादेवीदेवन्त्रीमयज्ञानयातैसौमस्यविवती"

यजुर्वेदे आपस्तम्बशाखायाम् ।

"स्वयमेवसमासमाराधानकरोतियतःस्वयमेवमाधवोतस्मातलोकेवेदेश्रीराधागीयतेस्वाधीनतयाएकरूपंद्विधाविधायरमयांचकारतस्मात्राधाकृष्णरूपमैक्यंसवर्तः" इत्यादि पुनः

ऋग्वेदे मूलानंदशाखायाम् ।

"सएकराधास्तूयमानावदःश्रीराधाकायूतरासिकानंदपशुःशकलशृंगारमयंततहाटककांत्यायुतंबर्हापीडंवनमालयूयंनटनाट्युतंकर्णपोतकोमकरिसोभायतेकेयूरकंकणाच्छुद्रघंटिकयाकनकयुतंयःपराविराजते" इत्यादि

आदिपुराणे ।

श्लोक—रहोविहारे वृषभानुपुत्री सुकीर्तिगर्भाद्भुतरत्नमस्ति ।
कृष्णस्यतत्प्राणसमानभूमि महीतलेनोकथितुं क्षमोहम् ॥

वाराहपुराणे ।

श्लोक—राधेति रुचिरं नाम ब्रूतेनित्यं किशोरकः ।
अनेकतापात्परितोरक्षतादेविराधिके ॥

ब्रह्मांडपुराणे ।

श्लोक—शृणु गुह्यतमं तात नारायणमुखाच्छ्रुतम् ।
सर्वैश्च पूजिता देवी राधा वृन्दावने वने ॥

सर्वत्रवर्जयेत्" । (१०) सामान्यतः व्यायाम और भोजन में २ घण्टे का अन्तर होना चाहिये । (११) भूख लगने पर व्यायाम न करना चाहिये और व्यायाम करने पर तत्काल न खाना-पीना चाहिये । नागपुर में एक बजाज का लड़का कसरत के बाद तुरन्त पानी पीने से मर गया; फिर कुछ खा लेना कितना भयानक है ? व्यायाम से गले में कुछ खुश्की मालूम होती है, इसलिए शीतल जल का कुल्ला कर लेना चाहिये या मुख में मिश्री की डली अथवा इलायची के २-४ दाने रख लेना चाहिये । कसरत के एक या आध घंटा बाद दूध पीना अच्छा है । (१२) हर एक मौसम में स्नान के पहले ही कसरत करनी चाहिये । (१३) मालिश करना बहुत अच्छा है, उससे बहुत रोग नष्ट होते हैं । रोज करना ठीक नहीं । जाड़े में एक हफ्ते में २-३ बार और गर्मी के महीने में २-३ बार करना चाहिये, क्योंकि मालिश भी अप्राकृतिक ही है । अपने हाथ मालिश करने से स्वास्थ्य और भी दुरुस्त होता है । पीठ की मालिश चाहे तो दूसरे के द्वारा की जाय । (१४) व्यायाम को खेल समझ कर करो, न कि बोझ । इससे बहुत जल्द तुम पहलवान बन जाओगे । (१५) व्यायाम करने का ढंग भी अच्छा होना चाहिये । उस समय टेढ़ा बाँका मुँह बनाने से व्यायाम के बाद भी चेहरा वैसा ही बना रहेगा और प्रसन्नवदन रहने से तुम भी प्रसन्न बन जाओगे । इसके लिये सामने शीशा रखने से निस्सीम लाभ होगा । (१६) व्यायाम के समय सामने शीशा रहने पर मनुष्य की भावना बड़ी बलवती बनती है और अंग प्रत्यंग भी प्रबल भावना के कारण बड़ी शीघ्रता से पुष्ट व गठीले बनते हैं । अतः व्यायाम के समय चित्त एकाग्र रख कर दृढ़

ब्रह्मवैवर्ते ।

श्लोक—यथाहि स्कंधशाखानां तरोर्मूलनिषेचनम् ।
तथैवाराधनं विष्णोःसर्वेषामात्मनश्च हि ॥

भाषार्थ—जैसे वृक्ष लगावे और ताके मूल (जड) में पानी जो डारे तो सब वृक्ष हरा रहताहै तैसे ही जो विष्णुभगवान्को पूजताहै उससे स्वतएव सब देवता प्रसन्न होतेहैं ।

मत्स्यपुराणे ।

श्लोक—कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति यः प्रयाति ब्रुवन्नरः ।
सयाति परमं धाम सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥

भाषार्थ—यह संसारमें जो पुरुष कृष्ण कृष्ण स्मरण करताहै वह अन्तमें शुद्धचैतन्य हो परमधाम गोलोकको जाताहै ।

भागवते ।

श्लोक—कृतादिषु प्रजा राजन् कलाविच्छंति संभवम् ।
कलौ खलु भविष्यंति नारायणपरायणाः ॥

श्लोक—घोरे कलियुगे प्राप्ते सर्वधर्मविवर्जिते ।
वासुदेवपरो भक्तोलभेतार्थं न संशयः ॥

पुनः—भगवानेव भूतानां सर्वत्र कृपया हरिः ।
रक्षणाय च लोकानां भक्तिरूपेण नारद ॥

पुनः—भक्तानने वसेद्ब्रह्मा शिरस्येव वसाम्यहम् ।
कण्ठेच शंकरो देवः पदे गन्धर्वकिन्नराः ॥

नारदगीतायाम् ।

श्लोक—वरमेकं वृणेथापि पूर्णकामाभिवृण्वतः ।
भगवत्युत्तमां भक्तिं तत्परेषु तथा त्वयि ॥

ब्रह्मवैवर्ते ।

श्लोक—सर्वपापप्रशमनंपुण्यमात्यंतिकंदया ।
गोविंदस्मरणं नृणां पदकादास्यपारणम् ॥

सम्पूर्ण रस भरा है। प्रातःकाल को 'अमृतवेला' कहते हैं। सच-मुच सृष्टि के इस प्रातःकालीन दिव्य अमृत को त्यागने वाला पुरुष जल्दी ही बूढ़ा व मृतक तुल्य हो जाता है। हमारे ऋषि मुनि इसी अमृत का सेवन नित्यशः ब्रह्ममुहूर्त में यथेष्ट सेवन कर इतने चंगे और चैतन्यमय बने हुए थे। रात भर के आराम के कारण प्रातःकाल में सम्पूर्ण शक्तियां अत्यन्त सतेज और बलिष्ट रहती हैं। कठिन से कठिन काम भी उस समय सुगमतापूर्वक हो जाते हैं। ऋषि लोग ब्रह्ममुहूर्त में उठकर प्रथम सर्वशक्तिशाली परमात्मा का ध्यान करते थे, जिससे कि परमात्मा की शक्ति उनमें प्रवेश करती थी और बड़े बड़े राजा भी उनके सामने शिर झुकाते थे। यदि हम भी चाहते हैं कि हमारे सम्पूर्ण काम, क्रोधादि अन्तर्बाह्य शत्रु हमारे सामने शिर झुकावें और संसार में हमारी कीर्ति हो, तो हमें प्रातःकाल उठने का अभ्यास डालना ही चाहिये। एक जगह कहा है ""Early to bed and early to rise makes a man healthy, welthy and wise" यानी प्रातःकाल में उठने वाला मनुष्य आरोग्यवान, भाग्यवान और ज्ञानवान होता है—यह कथन अक्षर अक्षर सत्य है। देर में सोनेवाला और देर में उठने वाला पुरुष कभी भी ब्रह्मचारी विवेकी व भाग्यवान नहीं हो सकता। अतः जिन्हें पूर्वजों की तरह वीर्यवान, ज्ञानवान, सामर्थ्य-सम्पन्न बनना हो, उन्हें रोज ब्रह्ममुहूर्त में ही उठना चाहिये और सब से पहिले ईश्वर-चिन्तन करना चाहिये। क्योंकि प्रातः काल में जो कुछ चिन्तन किया जाता है मनुष्य वैसा ही दिन भर बना रहता है। यदि आप प्रातः काल क्रोध करके उठगे, तो दिन भर क्रोधी ही बने रहेंगे

योगप्रकरण ।

गुरु—हेशिष्य ! देखो भक्तिवस्तुमें प्रीतिका स्वरूपहै और ज्ञानवस्तुमें निश्चय विश्वास कराता (दृष्टांत) जैसे किसीने कहा कि मथुराजीमें एक सोनेका मंदिर बनाहै उसमें एकपुरुष और एक स्त्री सुंदर है यह सुनके उसमेंकोनिश्चय होना सोज्ञानका स्वरूप सुनके उसमें प्रीति होना और मिलनेकी उत्कंठा सोई भक्तिका स्वरूप है परंतु सुननेसे और प्रीतिसे प्राप्ति न होगी सोई बात श्रुत "तद्दर्शनाभ्युपायो योगः" अर्थ जिसका चरित्र सुन प्रीति होतो तासे मिलना चाहिये इत्यादि वहांके मार्गपर चले और संसारसम्बंधते प्रीति तोडे सो बात विना योगाभ्यासके दुर्लभहै विना योगके चित्त एकांत नहीं विना एकाग्र मन कार्यकी सिद्धि नहीं ।

पातंजल योगदर्शन ।

सूत्र—योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ।

भाषार्थ—हे शिष्य ! तू अब सावधान हो सुन योगशब्दका तात्पर्य चित्तको अनुरोध याने एकाग्र करना यावत् चित्त चलायमानहै तबतक कार्य सिद्ध नहीं होता ।

भारतके मोक्षपर्वमें ।

श्लोक-मातुरंकगतो बालो ग्रहीतुं चंद्रमिच्छति ।
यथा योगं तथा योगी संत्यागेन विना बुधाः ॥

भाषार्थ--हे शिष्य! यावत् चित्त विषयमें फसा तावत् धारणा नहीं यथा माताकी गोदमें बैठाहुआ बालक चंद्रमा पकरनेको हाथ फैलावताहै सो मिथ्याहै।

योगवासिष्ठमें ।

श्लोक—संगीहि बाध्यते लोके निःसंगः सुखमश्नुते ।
तस्मात्संगः परित्याज्यः सर्वदा सुखमिच्छता ॥

भाषार्थ—हे शिष्य ! देखो जापुरुषको योगमार्गमें प्रवेशहोनेकी इच्छाहो सो प्रथम कसंग याने विषयोंका संग त्यागै जबतक कुसंग न त्यागैगा तावत

हर दम जहर कार्बन निकला करता है जिससे कि मनुष्य निश्चय ही रोगी और अल्पायु बन जाता है। गन्दगी से जिन्दगी बरबाद होती है, यह सिद्धान्ततत्व सदा ध्यान में रक्खो। (६) आत्मोद्धार की इच्छा रखने वालों को जल्दी सोना और जल्दी उठना चाहिये। बारह बजे के पहले का एक घण्टा बारह बजे के बाद के तीन घण्टे के बराबर होता है। साढ़े छः घंटे से ज्यादा हर्गिज न सोना चाहिये। अधिक सोने वाला कदापि स्वस्थ व महापुरुष नहीं हो सकता। महापुरुष कम सोने वाले और अधिक काम करने वाले ही हुआ करते हैं। रात्रि को खासकर विद्यार्थियों को ६ बजे ही सोना चाहिये और प्रातः काल ४ बजे भगवन्नाम स्मरण करते हुये उठना चाहिये। और बिछौने को एक दम त्याग देना चाहिये, और शुद्ध जगह पर बैठ कर सब से पहले भगवन्न-चिन्तन, स्तुति वा पवित्र संकल्प करने चाहिये निस्सन्देह आप वैसे ही बन जावेंगे।

(७) सोते वक्त दीपक को बुझा देना चाहिये क्योंकि वह स्वयं 'कार्बन' फैला कर हवा के प्राण को और हमारे जान को खा डालता है; तथा नाक मुँह और पेट को काजर की कोठरी बना देता है। (८) सोने के पहले और अन्त में जल पीना चाहिये और परमात्मा का ध्यान करते हुए सोना और उठना चाहिये। (९) निद्रा के पहले पेशाब अवश्य कर लेना चाहिये। जाड़ा या किसी कारण दिशा, पेशाब को रोकना बड़ा भयानक है। इससे स्वप्न-दोष होता है। (१०) जब तक खूब नींद न आवे तब तक बिछौने पर न लेटना चाहिये। बिछौने पर फुजूल पड़े पड़े जागते रहने की हालत में चित्त दुर्वासनाओं की तरफ दौड़ता है (११) निन्द्रा के समय मन को

श्लोक–शनैःशनैरुपरमेद्बुद्ध्यांधृतिगृहीतया ।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिंतयेत् ।
यतो यतो निश्चलति मनश्चंचलमास्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥

भाषार्थ–पूर्वतर संस्कारसे मन आत्मनिष्ठ हुआ परंतु चंचलता नहीं छोडता तो ताको शनैः शनैः कर एकाग्र करे ।

श्लोक–ज्ञानं वदंतीह विमोक्षकारणं तज्जायते नैव विलोलचेतसि ॥
लौल्यं न योगेन विना प्रशाम्यति तस्मात्तदर्थं हि यतेत साधकः॥

भाषार्थ–हे शिष्य ! जो तुमने कहा कि मोक्षका कारण ब्रह्मज्ञान हमने उपनिषदोंमें सुना सो ठीक परंतु चित्तके एकाग्र विना केवल ज्ञानसे मुक्ति संभवै नहीं सो चित्तकी एकाग्रता सोई योगहै जैसे वस्त्रमें तागेका सूचीसे प्रवेश होता है प्रमाण ।

यजुर्वेदे कठोपनिषदि ।

"दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः" इत्यादि

भाषार्थ–आत्मा सूक्ष्म ताको सूक्ष्मदर्शी महात्माजन सूक्ष्मही दृष्टिसे देखतेहैं तामें सुरति सोई डोरा चित्त एकाग्र सो सूई आत्मावस्त्रमें प्रवेश करतेहैं यथा रेशमी वस्त्रमें महीन सूई तागा काम देताहै कुछ सुतरीसूजा जिससे टाट सिया जाताहै सो काम नहीं देता सो ज्ञान और चित्त अनुरोध सो योगहै ।

गीतायाम् ।

श्लोक–सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च ।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ॥

भाषार्थ–जो पुरुष सर्वद्वार याने नेत्र कान नासिकादि इनके विषयोंसे रोक मनको हृदयमें निरुद्ध करके प्राणयोगबलसे मस्तकमें चढाताहै सो योगी अंतकालमें ॐ स्मरण करता हुआ मेरेको प्राप्त होताहै प्रमाण ।

"प्राणायाम"

नियम तेरहवाँ:—

"प्राणो यत्र विलीयते मनस्तत्र विलीयते।
मनोविलीयते यत्र प्राणस्तत्र विलीयते॥"

—हठयोग

"प्राणों का लय (या कुम्भक) होने से मन का भी लय होता है अर्थात् मन भी स्थिर होता है और मन के लय होने से पंच प्राण भी स्थिर होते हैं, उनका लय होता है।" श्रीमनु महाराज कहते हैं "जैसे अग्नि से धातुओं का मल नष्ट होता है वैसे ही प्राणायाम से मन और इन्द्रियाँ पवित्र व स्थिर होती हैं।"

वक्तव्य:—प्राणायाम में इतनी प्रचंड शक्ति है कि उससे रोगी भी निरोगी और व्यभिचारी भी ब्रह्मचारी हो सकते हैं। इसी कारण भगवान् ने गीता के छठें अध्याय में इसका सुन्दर वर्णन किया है। प्राणायाम से ब्रह्मचर्य की उत्कृष्ट रक्षा होती है। प्राणायाम से आयु वृद्धि असीम होती है। अल्पायु भी दीर्घायु हो जाते हैं। प्राणायाम के तीन अंग हैं (१) पूरक, (२) रेचक और (३) कुम्भक।

(१) पूरक—दाहिनी नासिका अंगूठे से दबाकर बाँयी से वायु भीतर खींचना और दोनों नासिकायें फिर बन्द किये रहना।

(२) कुम्भक—भीतर की वायु जहाँ तक हो सके रोकना।

भाषार्थ—शैल कहे पर्वतकी कंदरानमें जो समाधि जासे मनविलय हो सा हमें कब प्राप्त होगी और जब मन विलय होगा तब देहानुसंधान न रहेगा तब शरीरपर मिट्टी जमा होगी तापै पंक्षी बैठेंगे और जो लोग यह शंका कहें कि शंकरस्वामीने योगखंडन किया तो । शंकरदिग्विजयमें मंडनमिश्रके शास्त्रार्थमें आकाशमार्गद्वारा उसका रूपधर कामशास्त्रमें उनकी स्त्रीके प्रश्नका खण्डन किया और वेदांतमें व्यासमुख्य सो भी योगप्रतिपादनमें सनत्कुमार तथा मातंग ऋषि कहते हैं ।

योगचूडामणिमें ।

श्लोक—अग्निष्टोमादिकान्सर्वान्विहाय द्विजसत्तमः॥
योगाभ्यासरतः शांतः परं ब्रह्माधिगच्छति ।

भाषार्थ—हे द्विजो ! तुम रातदिन अग्निहोत्रमें लगे रहते हो याते स्वर्गकी प्राप्ति अल्पसुख वालीहै विना परब्रह्मकी प्राप्ति कल्याण नहीं ताते योगाभ्यास करो जासे यही देहसे स्वर्गादिसुख तुच्छ दीखैहै गीतामें भी कहा है " सावैबलवती सर्वतः संयमेनोपशाम्यति " इत्यादि भाषार्थ प्रारब्धकर्मकी वासना सबसे प्रबलहै सो भी जो समय योगी समाधिमें तत्पर ध्यानदशामें सब अपनाही शांत होतेहैं और योगीको सब सामर्थ्यहै चाहै अनेक शरीर धारण करे सो सौभरि ऋषिने पचास शरीर धारण कर राजाकी पचासौं कन्या व्याही सोई योगहीको बात भीष्मपितामहजीने पुष्टकिया ।

महाभारते मोक्षपर्वणि ।

श्लोक—आत्मनां च सहस्राणि बहूनिभरतर्षभ ।
योगः कुर्याद्बलं प्राप्य तैश्च सर्वैर्महींचरेत् ॥
प्राप्नुयाद्विषयान्कश्चिदकश्चिद्यस्तपश्चरेत् ॥
संहरेच्च पुनस्तत्तांत्सूर्यस्तेजोगुणानिव ।

भाषार्थ—भीष्मपितामहजी कहैहैं कि हे युधिष्ठिर ! योगीको सब सामर्थ्य है योगी एकशरीरसे भोग करताहै और एकसे तप करता है जब इच्छा

हर वक्त नीची ही अर्थात् नम्र ही रखना होगा व मन में ईश्वर वा मातृ-नाम का पवित्र जप अवश्य करना होगा। निस्सन्देह तुम्हारा इसी जीवन में उद्धार होगा।

मामूली रबर की साइकिल जो सैकड़ों मील मनुष्य को बिठलाकर ले जाती है सो किसके बल पर ? कुम्भक ही के बल पर। इतनी बड़ी प्रचंड रेल भी कुम्भक ही के बल पर लाखों मन का लदा हुआ बोझा लिये हुये बिना दिक्कत के चलाई जा रही है। कुम्भक ही के बल पर मनुष्य अथाह पानी में तैर कर पार चला जाता है। संक्षेप में कहा जाय तो यह सम्पूर्ण जगत कुम्भक ही के बलपर कर्तव्य-तत्पर दिखाई दे रहा है। कुम्भक में सम्पूर्ण जगत् को हिलाने की शक्ति है। योगी लोग इस ईश्वरीय शक्ति को प्राणायाम के द्वारा अपने में अमर्यादितरूप से बढ़ाकर अजर अमर यानी अकाल मृत्यु न पानेवाले दीर्घजीवी हो जाते हैं, और भोगी लोग अपनी उस दैवी शक्ति को, काम के गुलाम बन नष्ट कर के स्वयं जर्जर और जीते जी ही मुर्दे बन जाते हैं। अतः जिन्हें दीर्घायु, निरोग, ब्रह्मचारी और सामर्थ्य-सम्पन्न बनना हो, उन्हें चाहिये कि "प्राणायाम की विधि" किसी योग्य पुरुष-द्वारा जल्दी से सीख लें। हमारे नित्यकर्म में जो "सन्ध्योपासन" रक्खा है उसमें ऋषि लोगों के कितने भारी उपकार हैं। परन्तु आजकल अङ्गरेज़ी पढ़े हुये कई अभागे लोग इस प्रचंड दैवीशक्ति के रहस्य-पूर्ण सन्ध्या को नहीं करते। वे संध्या की कुछ भी कीमत नहीं समझते। यह देश का महा दुर्भाग्य है। इसी कारण आज हमारी भी कुछ कीमत नहीं हो रही है। प्रभो ! हमारे समस्त भाइयों की आँखें खोल दो और इस दैवी शक्ति का खज़ाना—संध्या युक्त

याज्ञवल्क्यसंहितामें ।

श्लोक–यज्ञाचारदमाहिंसातपःस्वाध्यायकर्मणाम् ।
अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम् ॥

भाषार्थ–आचार विचार इन्द्रियनका दमन तप वेदांतज्ञान वेदका पाठ सो आत्माका स्वरूप लक्ष्य और परमात्माकी प्राप्ति विना योग सम्भवै नहीं तहां प्रमाण ।

दक्षसंहितामें ।

श्लोक-स्वसंवेद्यं हि तद्ब्रह्म कुमारी स्त्री सुखं यथा ।
अयोगी नैव जानाति जात्यंधोहि घटं यथा ॥

भाषार्थ–हे पुरुष ! जैसे यौवन अवस्था प्राप्तवाली स्त्री अपने पतिको पहिचानती है तैसे योगी योगद्वारा अनुभवकरता परमात्माको पहिचानताहै और योगमार्गमें नहीं प्रवेश जिसका उसको यथा कुमारी स्त्री पतिसुख नहीं जानतीहै न तामें प्रीति करती ।

सांख्यदर्शनमें ।

सूत्र–"नोपदेशश्रवणेऽपि कृतकृत्यता परामर्षादृते विरोचनवत्" ।

भाषार्थ–विना योगाभ्यासके केवल सुनेते वा कहेते वा मनमें समझ-लियेते नहीं कार्यसिद्ध होवे जैसे कोई महात्मा कहीं रहैहै उसे सुनके तृप्त न होगा जब चलके उसके दर्शन करेगा तब आनंद होगा ।

श्रुति–"अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति" । इति ।

भाषार्थ–तिस आत्माका तदाकार होना हर्षशोकका आविर्भाव होना धीरपुरुष यह सब योगद्वारा मानतेहैं ज्ञान भी मोक्षका कारण परंतु योग विना संभवे नहीं सो यतीका प्रमाण सुनो ।

कृष्णयजुर्वेदे श्वेताश्वतरोपनिषद्में ।

श्लोक–त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरं हृदेन्द्रियाणि मनसासन्निवेश्य ।
ब्रह्मोडुपेन प्रतरेतविद्वान्स्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि ॥ (इत्यादि)

To be weak is a great sin; victory and happiness go to the strong. अर्थात् दुर्बल रहना यह एक महापाप है। सुख और यश बली ही को मिलते हैं। जिसकी आत्मा दुर्बल है, वही दुर्बल है। उपवास से आत्मा अत्यन्त ही निर्मल हो जाती है – मन और तन दोनों निरोग बन जाते हैं।

ऐसे दो मनुष्य लीजिये जिनकी पाचनशक्ति अति भोजन से बिगड़ी हो। एक मनुष्य चूरण पाचक खाकर, अवलेह चाटकर और दवा की गोलियाँ और भी पेट में भर कर पेट को दुरुस्त कर रहा है और दूसरा मनुष्य एक दो दिन भोजन न करके रोज़ प्रातः स्नान, प्रातः सन्ध्या और रोज़ एक दो मील का चक्कर लगा के अपनी भूख को सुधार रहा है। अब कहिए, दोनों में कौन बुद्धिमान् है। महीनों दवा खाकर अपने शरीर को भाड़े का टट्टू बनानेवाला या उपवास और व्यायाम द्वारा अपने को दो ही दिन में चङ्गा करने वाला ?

उपवास से शारीरिक व मानसिक दोष जड़ से नष्ट हो जाते हैं और मनुष्य की आत्मशक्ति बहुत कुछ बढ़ जाती है। अतः ब्रह्मचर्य के लिये उपवास अत्यन्त ही फायदेमन्द है, क्योंकि उससे संपूर्ण नीच इन्द्रियाँ फीकी पड़ जाती हैं और मन पवित्र बन जाता है। इसी पवित्र दृष्टि से हमारे ऋषियों ने प्रति मास में दो उपवास (एकादशियाँ) रक्खे हैं, जो कि लोक और परलोक दोनों के लिये परम उपयोगी हैं।

परन्तु उपवास तब ही उपकारी हो सकता है जब कि केवल जल को छोड़कर दूसरी कोई भी चीज़ मुख में न डाली जाय। अत्यन्त नाजुक प्रकृतिवाले दूध अथवा शुद्ध फल को खा सकते

योगबीजनामकग्रंथे।

श्लोक-ज्ञानादेव हि मोक्षं च वदंति ज्ञानिनः सदा।
न कथं सिद्धियोगेन योगः किं मोक्षदो भवेत्॥

भाषार्थ-हे ईश्वर! आप योगसे कहते हैं हमने ज्ञानद्वारा मोक्ष सुनी सोई बात श्रुतिमेंहै "ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः" अर्थ-तो आप कैसे कहतेहैं तहां महादेवजी कहैहैं।

श्लोक-ज्ञानेनैव हि मोक्षं च तेषां वाक्यं तु नान्यथा।
सर्वे वदंति खड्गेन जयो भवति तर्हि किम्॥
विना युद्धेन वीर्येण कथं जयमवाप्नुयात्।
तथा योगेन रहितं ज्ञानं मोक्षाय नो भवेत्॥

भाषार्थ-हे गिरजे! केवल ज्ञानसे मोक्ष ऐसा कहनेवाले मिथ्या कहते हैं जैसे खड्गसे शत्रुविजय युद्धमें सो ठीक केवल खड्गसे नहीं खड्गका धारण करनेवाला मनुष्य शत्रुपर चलाया तब जय तैसे कामादिक शत्रूनपै योगद्वारा ज्ञानखड्ग चलाया जाताहै। पुनः सोई बात महादेवजी कहैहैं सो सुनो।

श्लोक-ज्ञाननिष्ठो विरक्तो वा धर्मज्ञोपि जितेंद्रियः।
विना योगेन देवोपि न मोक्षं लभते प्रिये॥

भाषार्थ-हे गिरजे! चाहे ज्ञानीहो चाहे विरक्तहो चाहे सर्वधर्मका जाननेवालाहो चाहे जितेंद्रियहो चाहे देवताहो परंतु विनायोग मोक्ष नहीं तहां पार्वतीजी कहैहैं कि हे नाथ! जनकादिक नृपोंने कौन योगसाधन किया जो कैवल्यमोक्षको प्राप्त भये ऐसा नारदजीने कहाथा यह सुन महादेवजी पुनः कहैहैं प्रिये! तुम्हारा कहना सत्यहै कि जनक ज्ञानद्वारा कैवल्यमोक्षको प्राप्त भये परंतु पूर्वमें ये योगी थे ताका प्रमाण।

निकाले उसे पूरा करना"—यह श्रेष्ठ पुरुषों का लक्षण है। प्रतिज्ञा-पालन करने वाले मर्द पुरुष होते हैं और प्रतिज्ञा तोड़ने वाले नामर्द पुरुष कहलाते हैं। सत्य-प्रतिज्ञ पुरुष अपने प्राण को भी त्याग देते हैं; परन्तु अपने वचन को कदापि नहीं त्याग सकते व कलंकभूत नहीं हो सकते हैं। "सुकृत जाय जो प्रण परिहरऊँ।" अपने किये हुये प्रण को तोड़ने से संचित पुण्य नष्ट हो जाता है। "प्राण जाय पर वचन न जाई"—यही महापुरुषों का लक्षण है और इसी में कीर्ति है व कीर्ति ही जीवन है। सत्यप्रतिज्ञ पुरुष के सामने सभी लोग शीश झुकाते हैं।

लुभाव से मुँह मोड़ना यद्यपि पहिले मरतबे सहज नहीं है तथापि वहाँ से तुरन्त हट जाने से अथवा उस लुभाव का ध्यान तथा चिन्तन करना ही छोड़ देने से और उसके बदले सुकर्म तथा शुभ चिन्तन में रत होने से मनुष्य उस लुभाव से निःस्सन्देह बच सकता है। यदि एक ही मरतबे मनुष्य इस प्रकार मनोनिग्रह करके दिखलावेगा, तो उसमें प्रतिकार करने की एक अद्वितीय दैवी शक्ति जागृत होगी; जिससे कि वह दूसरे मरतबे लुभाव से अपने मन को बड़ी आसानी से खींच सकेगा; तीसरे मरतबे और भी आसानी से, और इसी प्रकार दिन दिन उसकी वह पुरुषार्थ-शक्ति बढ़ती ही जायगी। इस प्रकार दस-बारह मरतबे मनोनिग्रह करने से उसमें ऐसा कुछ ईश्वरीय बल प्राप्त होगा कि जिसके सामर्थ्य से वह जो कुछ ठान लेगा वही कर दिखलायेगा। फिर वह श्रीभीष्म पितामह, श्रीलक्ष्मणजी, श्रीजनकजी आदि महापुरुषों की तरह लुभावपूर्ण परिस्थिति में रहते हुए भी अपने मन को विचलित नहीं होने देगा। अतः शुरू ही में अपनी शूरता

भाषार्थ-हे अर्जुन! देहके अन्तकालविषे जिस पदार्थका स्मरण करता हुआ शरीर त्यागताहै वह जन्मले उसीको भोगता है सोई बात पुनः महादेवजी कहैहैं ।

योगबीजग्रन्थमें ।

श्लोक-पिपीलिका यदा लग्ना देहे ध्यानाद्विमुच्यते ।
असौ तु वृश्चिकैर्दष्टो देहांते वा कथं स्मरेत् ॥

भाषार्थ--हे गिरजे! चींटीके काटे ध्यानउच्चाटन होता फिर सौ बिच्छू मारे किसे होश रहता ताते जो योगाभ्यासी उन्हें वह बाधा नहीं होती वह इच्छासे शरीर छोडतेहैं और दिव्य पुरुषको प्राप्त होतेहैं ।

महाभारते मोक्षपर्वणि ।

श्लोक-यथा चानिमिषाः स्थूला जालं भित्त्वा पुनर्जलम् ।
प्रविशंति तथायोगास्तत्पदं वीतकल्मषाः ॥
यथैव वागुरां छित्त्वा बलवंतो यथा मृगाः ।
प्राप्नुयुर्विमलं मार्गं विमुक्ताः सर्वबन्धनैः ॥
अबलाश्च मृगा राजन्वागुरासास्तथा परे ।
विनश्यंति न संदेहस्तद्वद्योगबलादृते ॥

भाषार्थ-हे राजन् । यथा प्रबल मगर जालभेदन कर अपने स्थानको पहुंचताहै वा बलयुक्त मृग जालतोड निकस जाताहै तैसेही योगाभ्यासी पुरुष योगबलद्वारा प्रारब्धकर्मरूपी जाल तोड नित्यधाम सच्चिदानंदघनश्यामको प्राप्त होताहै ।

यजुर्वेदे कठोपनिषदि ।

श्लोक-शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैकातयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वङ् जन्या उत्क्रमणे भवंति इत्यादि ।

की तरह खींचना होगा। इसी में पुरुपार्थ है! इसी में कीर्ति है!! और इसी में ब्रह्मचर्य की रक्षा है!!! प्रतिज्ञा का स्मारक रक्खो। (इस ग्रन्थ का "मन व इन्द्रियां" यह प्रकरण वार वार पढ़ो और रोज पढ़ो)।

"डायरी"

नियम सोलहवां:—

"स्मरण वही" अथवा Diary यह एक मनुष्य का सब से घनिष्ट मित्र है। उसके पास हम जो चाहे सो जी खोल के बोल सकते हैं। यदि आपको आत्म-सुधार करना हो तो रोज़ दिन भर के भले बुरे कार्यों का वर्णन डायरी में ज्यों का त्यों लिखा करो और सोते समय उस पर गंभीर विचार किया करो, जिससे कि मनुष्य की श्रेष्टता का तथा नीचता का परिचय भली भाँति हो जाय और उसको अपने कर्मों के लिए हर्ष व पछतावा होकर, वह श्रेष्ठ पुरुषों के समान बनने के लिये कटिबद्ध हो जाय। प्रत्येक मास के अनन्तर दोष और गुण की सूची लिखा करोगे तो उसे अवलोकन करने में बहुत ही सुभीता तथा कल्याण होगा।

डायरी के लिखने से मनुष्य में सत्य का संचार होता है, आत्म-सुधार का दृढ़-संकल्प हठात् घुस जाता है, समय का आदर होने लगता है, नियमितता शरीर में भिन जाती है और आत्म-विश्वास के साथ ही साथ आत्मिक-बल भी बढ़ने लगता है।

"दूसरों के दोष देखने से मनुष्य दोषी बनता है और अपने

बाहेर चन्द्रमाका स्पर्श करे फिर भीतर जाता सो तासे ताको नाम हठयोग याने सूर्य्य चन्द्र दोनोंको मिलना सोई योग और योगशब्द भी मिलनेको कहैहै ।

योगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणे ।

श्लोक–द्वादशांगुलपर्यंते नासाग्रे संस्थितं विधुम् ।
हृदये भास्करं देवं यः पश्यति स पश्यति ॥

भाषार्थ--नासिकाके बारह अंगुल बाहर चन्द्रमाका स्थान अन्तःकरणमें सूर्य्यका वास प्राणद्वारा दोनोंका मेल सो हठयोग यह बात मुद्रासे सिद्ध होवैहै मुद्रा बहुत हठयोगप्रदीपिका ग्रन्थमें हैं यहां ग्रन्थविस्तारभयसे नहीं लिखा प्रमाण ।

श्लोक–अंतर्लक्ष्यं बहिर्दृष्टिर्निमेषोन्मेषवर्जितः ।
सा भवेच्छांभवी मुद्रा सर्वतन्त्रेषु गोपिता ॥

भाषार्थ–चित्तसे अन्तःकरण लक्ष्य अर्धनेत्रसे नासिकाका अग्रभाग देखना एकटकी ताको शांभवी मुद्रा कहतेहैं सो यह गुप्त बात गुरुद्वारा प्राप्तहै खेचरीआदि बहुत मुद्राएँ हैं । प्रथम षट्कर्मद्वारा अन्तःकरण साफ करले तब प्राणायामादि योगाभ्यास करे यह हठयोग सम्बन्धी स्वरकर्महै सो सुनो ।

हठयोगप्रदीपिकामें ।

श्लोक–धौतिर्बस्तिस्तथानेतिस्त्रौटकं नौलिकं तथा ।
कपालभातिश्चैतानि षट्कर्माणि प्रचक्षते ॥

भाषार्थ–हे शिष्य ! अब षट्कर्म याने छः प्रकारके कर्म सुनो धौती, वस्ती, नेति, त्रौटक, नौली, कपालभाति सो या छः प्रकारके कर्महैं सो इनते शरीर नीरोग नाडी शुद्ध सो नाडी शुद्ध विना प्राणायाम संभवे नहीं ।

श्लोक–कर्मषट्कमिदं गोप्यं घटशोधनकारकम् ।
विचित्रगुणसंधानैः पूज्यते योगिपुंगवैः ॥

"सततोद्योग"

नियम सत्रहवाँ:—

सम्पूर्ण दुर्गुणों का तथा दुर्भाग्य का मूल कारण एक मात्र आलस्य है, जो कि लोक और परलोक का प्रबल शत्रु है। बेकार स्त्री-पुरुष सदा विकारी व प्रमादी होते हैं और विकारी तथा प्रमादी स्त्री-पुरुषों का ब्रह्मचारी होना सर्वथा असम्भव है। नीच विचारों को दमन करने के लिये सुविचार एक श्रेष्ठतम उपाय है; सुविचार से भी "सुकर्मरतता" (न कि कुकर्मरतता) सर्व-श्रेष्ठ साधन है। "Constant occupation prevents temptation" सुकर्म में फँसे हुए मनुष्य के पास प्रलोभन नहीं आ सकता। आलस्य से मनुष्य के भीतर की संपूर्ण उच्च शक्तियां दब जाती हैं और शुभ कर्मों से—सततोद्योग से संपूर्ण दैवी शक्तियां एक एक करके प्रगट होने लगती हैं और इसी जन्म में मनुष्य के जीवन का प्रचण्ड विकास हो, उसकी कीर्ति-सुगंधि चारों ओर फैल जाती है। निरुद्योगी अर्थात् आलसी पुरुष सप्त जन्म में भी ब्रह्मचारी नहीं हो सकता। एक मात्र सततोद्योगी ही ब्रह्मचर्य को धारण कर सकता है। आलसी पुरुष जीते जी ही मुर्दा बन जाता है, आलसी पुरुष सदा सर्वदा पापी बना रहता है, संक्षेपतः उद्योग ही जीवन है और आलस्य ही मरण है, उद्योग ही पुण्य है और आलस्य ही पाप है—नरक है अतः जिन्हें पुण्यवान्, भाग्यवान् कीर्तिवान् और वीर्यवान् महापुरुष बनना हो, उन्हें परमावश्यक है कि वे सदा, सर्वदा शुभ कर्मों ही में फँसे रहें। जब कभी कुकर्म की ओर मन जाय तब "तत्काल" कोई अच्छी किताब पढ़ने अथवा इस ग्रंथ

नेतिकर्म ।

श्लोक-सूत्रं वितस्ति सुस्निग्धं नासानाले प्रवेशयेत् ।
मुखान्निर्गमयेच्चैषा नेतिः सिद्धैर्निगद्यते ॥

भाषार्थ—चिकना सूतका पक्का धागा मोटा कुछकर नासिकाद्वारा चढाय मुखसे निकासै इससे श्वास शुद्धरहै इससे प्राणायाममें कोई उपद्रव नहीं होता।

त्रौटककर्म ।

श्लोक-निरीक्षेन्निश्चलदृशा सूक्ष्मलक्ष्यं समाहितः ।
अश्रुसंपातपर्यंतमाचार्यैस्त्रौटकं स्मृतम् ।

भाषार्थ--अब त्रुटिकर्म कहतेहैं चित्त एकाग्र कर लघुपदार्थ यथा शालग्रामकी छोटी मूर्ति सामने धर एक टकदृष्टिसे उसे देखे जबतक नेत्रमें जल न भर आवे इससे दृष्टि शुद्ध औरहू शुभ वस्तु लक्ष्य आतीहै ।

नौलीकर्म ।

श्लोक-अमंदावर्तवेगेन तुदन्सव्यापसव्यतः ।
नतांसो भ्रमयेदेषा नौली सिद्धैः प्रचक्ष्यते ॥

भाषार्थ—अब नौली वर्णन करते हैं पखोरे नवायके दहिने बायें तरफसे पुरुष जस्ता की सलाईको शिश्न इंद्रियमें चलाय साफ करताहै उससे मूत्रकृच्छ्रका रोग नहीं और वज्रोली मुद्राको शुभ एककर्म और उसका सार ऊपर लिखा बस इतनेमें समझलेव ये सब हठयोगमें हैं ।

मंत्रयोगो योगबीजग्रंथे ।

श्लोक-हकारेण बहिर्याति सकारेण पुनर्विशेत् ।
हंसहंसेति मंत्रोयं जीवो जपति सर्वदा ॥
गुरुवाक्यात्सुषुम्णायां विपरीतो भवेज्जपः ।
सोहंसोहमिति प्राप्तो मंत्रयोगः स उच्यते ॥

भाषार्थ—हे पार्वति!हकार यह बाहर गमन करैहै सकार भीतर प्रवेश करैहै हंस मंत्र जीव जपताहै इसका उलटानाम सो गुरुद्वारा जानना सुषुम्णाद्वारा उलटता है सो अब मंत्र सोहं है ताकी उत्पत्तिकी विधि सुनो इस अंगमें

विश्वास" की परम आवश्यकता है। श्रद्धा बगैर सभी धर्म-कर्म वृथा हैं। दृढ़ विश्वास होने पर धर्मान्तर करने की कोई भी आवश्यकता नहीं है और दृढ़ विश्वास धर्म के अज्ञान से नहीं होने पाता। अतः सब से प्रथम अपने ही धर्म का पूरा ज्ञान कर लो। स्वधर्म के अज्ञान से ही मनुष्य पर-धर्म को स्वीकार करता है; जो कि उसकी प्रकृति यानी स्वभाव धर्म के विरुद्ध होने के कारण महान् विनाशक है। यह नितान्त सत्य है कि प्रत्येक धर्म उसी एक परमात्मा के तरफ जाने का रास्ता है; तब फिर स्वधर्म का त्याग कर, पर धर्म के स्वीकार करने की गरज़ ही क्या है? वैसा करना घोर मूर्खता व अधःपतन है। संपूर्ण धर्मों का सार "चित्त की शुद्धि" है। चित्त की शुद्धि बिना, सभी धर्म-कर्म अधर्म हैं। श्रद्धायुक्त स्वधर्माचरण से चित्त की शुद्धि अवश्य होती है। श्रीमनु महाराज ने अपने हिन्दू धर्म के लक्षण यों बतलाए हैं:—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौच इन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥१॥

(१) धृति अर्थात् धैर्य, (२) क्षमा अर्थात् दयालुता, (३) दम यानी मनोनिग्रह, कुविचारों का दमन, (४) अस्तेय अर्थात् चोरी न करना (५) शौच का अर्थ कायिक वाचिक मानसिक सांसर्गिक आर्थिक वगैरह सब प्रकार की पवित्रता, (६) इन्द्रियनिग्रह, (७) धी अर्थात् सुबुद्धि, (८) विद्या यानी जिससे मोहान्धकार नष्ट हो, ऐसा ज्ञान (९) सत्य अर्थात् हँसी-दिल्लगी में भी झूठ न बोलना और (१०) अक्रोध यानी क्रोध का न करना अर्थात् शान्ति;—ये धर्म के दश लक्षण हैं।

स्वांधिष्ठानमिदं तत्तु पंकजं शोणरूपकम् ।
बाणाख्या चात्र सिद्धिस्तु देवी यत्रास्ति शाकिणी ॥

भाषार्थ–स्वाधिष्ठान नाम चक्र लिंगस्थानमें छ दलका बभमयरल ब्रह्म देवता सृष्टि उत्पत्ति ६००० अजपा जपहै ।

मणिपूरक चक्र ३ ।

श्लोक–तृतीयं पंकजं नाभौ मणिपूरकसंज्ञकम् ।
दशारं डादिफान्तार्णं शोभितं हेमवर्णकम् ॥
विष्णवाख्यो यत्र सिद्धोस्ति सर्वमंगलदायकः ।
देवी तत्र स्थिता लक्ष्मीर्देवः मरमधार्मिकः ॥

भाषार्थ–हे शिष्य! यह मणिपूरक नाम चक्र नाभिस्थान (तोंदी) में दसदलका कमल डढणतथदधनपफ ये अक्षर सो दलहैं नीलवर्ण रंग तामें चतुर्भुज विष्णु शेषशय्या पर लक्ष्मीसहित विराजते ६००० अजपाजप इनको अर्पणकरे ।

अनाहत चक्र ४ ।

श्लोक–हृदयेऽनाहतं नाम चतुर्थं पंकजं भवेत् ।
स्थानं च कादिठान्तार्णं द्वादशारसमन्वितम् ॥

भाषार्थ–यह अनाहतचक्र हृदयमें इसमें बारह दलहैं क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ सपेद रंग दक्षिण शिवमूर्तिका पार्वतीजीसहित बास है ६००० जप अजपा इनके अर्पण इसके भेदनसे लोकपरलोकदृष्टि ।

विशुद्ध चक्र ५ ।

श्लोक–कंठस्थानास्थितं पद्मं विशुद्धं नामपंचमम् ।
हेमाभं षोडशारं च षोडशस्वरसंयुतम् ॥

भाषार्थ–यह विशुद्धनाम चक्र कंठस्थानमें पांचवाँ है स्वर्णरंग षोडश दलका कमल अआ इई उऊ ऋॠ ऌॡ एऐ ओऔ अंअः जीवात्मा देवताका बास साकिनदेवी १००० अजपा इसके भेदनसे योगी स्थिति सर्वविद्यापारंगत आयुज्ञान समाधि सौवर्षतक साध सकताहै ।

बेपरवाही से स्वास्थ्य की तथा ब्रह्मचर्य की आशा करना व्यर्थ है। सोने-जागने, पाखाने जाने, नहाने, ईश्वर-पूजन, भजन करने, खाने-पीने, पढ़ने पढ़ाने-घूमने तथा आराम करने आदि प्रत्येक कार्य का क्रम अर्थात् नियम बाँध लेने पर तुम्हें बहुत जल्द मालूम होगा कि तुम्हारा शरीर भी घड़ी की सुई की चाल से चल रहा है और प्रत्येक कार्य यंत्र के तुल्य सुखपूर्वक और उन्नतिप्रद हो रहा है। मन भी कर्तव्य-पालन से सुप्रसन्न व बलिष्ट हो रहा है। नियमितता से मूर्ख भी ज्ञानी, रोगी भी निरोगी, दुर्बल भी प्रबल, अभागा भी भाग्यवान और नीच भी उच्च बन जाता है। नियमितता से मनुष्य में मनुष्यत्व एवं ईश्वरत्व प्रगट होने लगता है। आज तक जितने महापुरुष हुए हैं वे सब नियम के पूरे पाबन्द हुए हैं। अनियमित पुरुष को हमने महापुरुष बना हुआ आज तक न देखा है, न सुना ही है। स्वास्थ्य-सुधार के जितने नियम संसार में विद्यमान हैं, उन सब में "नियमित समय पर काम करने का नियम"—सर्व-श्रेष्ठ है। अनियमित पुरुष कदापि निरोगी तथा ब्रह्मचारी नहीं हो सकता। अतएव आरोग्य तथा ब्रह्मचर्य्य की रक्षा के लिये नियमितता का पालन करना प्राणिमात्र का प्रथम तथा श्रेष्ठ कर्तव्य है। यह नितान्त सत्य है कि "जिसका कोई नियम नहीं है उसके जीवन का भी कोई नियम नहीं है।"

भाषार्थ–प्रथम साधनमें यह देखै कि कोई नादमें मन लगाताहै या लगावे यथा सितार जो इनमें लगा तौ ध्वन्यात्मकमें मन लगा शब्दमें मन लय होकर स्थित होगा सो शब्द दोप्रकारका एक वर्णात्मक जो स्वतएव नित्य एकध्वन्यात्मक जो तालद्वारा हो ।

श्लोक–सिद्धासने स्थितो योगी मुद्रां संधाय वैष्णवीम् ।
शृणुयाद्दक्षिणे कर्णे नादमन्तर्गतं सदा ॥
अभ्यस्यमानो नादोऽयं ब्रह्मणो वृणुते ध्वनिम् ।
पक्षाद्विपक्षमखिलं जित्वा तुर्यपदं व्रजेत् ॥
श्रूयते प्रथमाभ्यासे नादो नानाविधो महान् ।
वर्धमाने तथाभ्यासे श्रूयते सूक्ष्मसूक्ष्मता ॥
आदौ जलजतन्त्र्योश्च भेरीनिर्झरसंभवः ।
मध्ये मर्दलशब्दाभो घण्टाकाहलजस्तथा ॥
अन्ते च किंकिणीवंशीवीणाभ्रमरनिस्वनः ।
इति नानाविधे नादे श्रूयते सूक्ष्मसूक्ष्मता ॥

भाषार्थ–प्रथम जिज्ञासुपुरुषको चाहिये एकांतमें सिंहासन याने पंथी मार और नाक नेत्र कान बंद करे दोनों हाथोंके अंगूठासे कान दोनों बन्द करे दोनों बीचकी अंगुरीसे नेत्र (आंख) बंद करे फिर सुरत अन्तर में प्रवेश करे तब नानाप्रकारके शब्द सुनबेमें आवेंगे दाहिने कानसे विचित्रनाद सुनबेमें आवेंगे अभ्यास एक पक्ष वा द्वै पक्ष करे तो नाद श्रवणमें आवेगा जैसा अभ्यास बढता जायगा तैसे ही नाद सूक्ष्मते सूक्ष्म सुनबेमें आवैहैं ।

भारते मोक्षपर्वणि ।

श्लोक–शब्दस्य हि ब्रह्मण एष पंथा यन्नामभिर्ध्यायति धीरपार्थैः ।
सिद्धेन्यथार्थे न यतेत भूयः परिश्रमं तत्र समीक्षमाणः ॥

जाते हैं, परन्तु प्रेमी मनुष्य उस वेचारे का पिण्ड नहीं छोड़ते। फिर रोग व कामरिपु भी ऐसे पुरुष का पिण्ड नहीं छोड़ते। यद्यपि बाहर से तेल-पानी और सज-धज के कारण ऐसा पुरुष वेश्या की तरह सुन्दर दिखाई देता हो, परन्तु उसका वह सौंदर्य गुप्त-रोग व पाप से भरा रहता है और इस बात की सत्यता थोड़ा सा निष्पक्ष आत्म-संशोधन करने से तत्काल मालूम होती है। अस्तु।

सभी जगह पवित्रता आवश्यक है, इसमें कोई संदेह नहीं। खड़ाऊँ से मनोविकार शान्त होते हैं, यह हमारा अनुभव है; तथा दृष्टि भी सतेज होती है। पर हाँ, ऐसा रद्दी खड़ाऊँ न पहिनना चाहिये.जिससे कष्ट हो, खड़ाऊं हलका व सुखप्रद होना चाहिये। खड़ाऊँ का अच्छापन अथवा बुरापन उसकी खूंटी पर सर्वथा निर्भर है। अतः खूँटियों की गुण्डियाँ चौड़ी तथा सुखावह हों।

"पैदल चलना"

नियम बाईसवाँ:—

ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये पैदल चलना आवश्यक बात है। व्यर्थ थोड़ी थोड़ी बात के लिये व थोड़ी दूर के लिये बिना आवश्यकता के गाड़ी घोड़े, एक्का, टाँगा, साइकिल इत्यादि पर चढ़ना निःसन्देह ब्रह्मचर्य से नीचे गिरना है। साइकिल पर बैठने से तो ब्रह्मचर्य तथा स्वास्थ्य को बहुत हानि होती। कैसी ही दिशा मालूम होती हो परन्तु एक मील तक साइकिल पर बैठ के जाने से ही

सूत्र—"प्रमाणविपर्य्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः" ॥

भाषार्थ—प्रमाण विपर्यय विकल्प निद्रा स्मृति ये पांच प्रकारकी चित्तकी वृत्तिहैं तिनमें इनके स्वरूप सुनो प्रमाण दोप्रकारके प्रत्यक्षप्रमाण अनुमान प्रमाण सो प्रत्यक्ष प्रमाण जो शास्त्रमें दृष्ट कहे प्रत्यक्ष वस्तु दीखना। अनुमान दो प्रकारका संज्ञासे भास याने जंगलमें अग्नि होगी निश्चय यहां धुवां है अवलोकसे विपर्य्यय मिथ्या ज्ञानमें सत्य स्वरूप देखना यथा शुक्तिमें रजत(चांदी) जानपरती सो मिथ्या यह विपर्य्यय लक्षण विकल्पलक्षण तहां प्रमाण।

श्रुति—"शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः"।

अर्थ—शून्यवस्तुमें शब्दजन्य ज्ञानका अनुपाती तिसका नाम विकल्प अब निद्राको कहैहैं।

सूत्र—"अभावप्रत्ययालंबनावृत्तिर्निद्रा"।

अर्थ—बाह्यवृत्तिका सर्वविषयसे उपराम हो तमोगुणाश्रयचित्तवृत्ति अवरोध सो निद्रा। इति।

सूत्र—अनुभूतिविपर्यासप्रमोषः स्मृतिः।

अर्थ--प्रत्यक्षादि प्रमाण ताको स्मृति कहतेहैं इति। सो ऊपरकी कही हुइ पांच वृत्तियोंका अनुरोध याने इनके वश चित्त न हो सो राजयोग पतंजलिने अपने योगसूत्रमें कहा हठयोग मन्त्रयोग लययोग ये राजयोगके अन्तरहैं सोई बात हठयोगप्रदीपिकाकार स्वात्मारामयोगीने अपने ग्रन्थमें कहीहै।

हठयोगप्रदीपग्रंथे।

श्लोक--पीठानिकुंभकाश्चित्रादिव्यानि करणानि च।
सर्वाण्यपि हठाभ्यासे राजयोगफलावधि॥

भाषार्थ—यह बात हठयोगमें पद्मादि आसनचक्र सूर्य्यभेदन विचित्र कुंभक खेचरी आदि मुद्रासे ये सब राजयोग अन्तरहैं तहां जैसे क्रिया योग प्रमाण।

साबुन से वह नेत्र के काले धब्बे निकल सकेंगे ? कदापि नहीं ! सभ्य स्त्री-पुरुष या बालक को अपनी ऐसी पतित दशा देखकर— अपना काला मुँह देखकर निःसंदेह बड़ा ही दुख होगा—उन्हें कृत कर्मों का पछतावा होगा। प्रिय मित्रो ! तुम्हें यदि सच्चा पछतावा होता हो तो हम आप को इसकी अत्यन्त सुलभ औषधि बतलाते हैं कि "वीर्य-रक्षा करो" बस, यही इसकी सुलभ व अनुभव-सिद्ध औषधि है। जितना अधिक तुम वीर्य धारण करोगे उतना ही अधिक तुम्हारा मुँह उज्ज्वल बनता जायगा। आँखों की वह कालिमा नष्ट होती जायगी और जितना अधिक तुम वीर्य-नाश करोगे उतना ही अधिक तुम्हारा मुँह काला बनता जायगा। यदि तुम छः ही मास वीर्य-संग्रह करोगे तो तुम्हारे तन, मन दोनों पवित्र बन जाँयगे और चेहरा स्वच्छ बन जायगा, पूर्ण विश्वास रक्खो। जब से तुम वीर्य धारण करने लगो तब से ऐसी 'दृढ़ भावना' रक्खो कि:— "हमारे नेत्र स्वच्छ हो रहे हैं।" (नेत्र पर से हाथ घुमाकर कहो कि—) अब कालिमा नष्ट हो रही है। सूर्य के माफिक मेरे नेत्र तेज संपन्न हो रहे हैं। मेरी दृष्टि पवित्र हो रही है—पाप दृष्टि नष्ट हो रही है। मैं निष्पाप हूँ ! पवित्र हूँ !! तेजस्वी हूँ !!!" इत्यादि। तुम इस ग्रन्थ में के दिव्य नियमानुसार चलने से वीर्य-रक्षा प्रतिज्ञापूर्वक कर सकते हो, ऐसा हमारा अत्यन्त दृढ़ अनुभव है। प्राणायाम से दृष्टि अत्यंत तीव्र होती है। हाँ, कीर्ति की तथा आत्मोद्धार की सच्ची इच्छा जरूर होनी चाहिये। 'लोक निन्दा का भय वीर्यनाशकारिणी कुवृत्तियों को रोकने के लिये अति उत्तम उपाय है'—ऐसा सज्जनों का अनुभव है।

भाषार्थ–पूर्व ऊपर कह आये जिन्हें तिनमें यह अहिंसाका नाम है।

सत्यलक्षणंमनुस्मृतिचतुर्थाध्याये।

श्लोक–सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादिति धर्मः सनातनः॥

पुनः–हंसोपाख्याने हंसनारायणवाक्यं ब्रह्माणं प्रति।

श्लोक–सत्यं स्वर्गस्य सोपानं पारावारस्य नौरिव।
न पावनतमं किंचित्सत्यस्याध्यागमात्क्वचित्॥

पुनः अथर्ववेदकी मुंडकोपनिषदमें।

मूल–सत्यमेव जायते नानृतं सत्येन पंथा विततो देवयानः। इति।
पुनः।श्रुतिः"सत्येनलभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा"(पुनः)हरिश्चंद्रवाक्यम्।

श्लोक–अश्वमेधसहस्राणि सत्यं च तुलया धृतम्।
अश्वमेधसहस्रेभ्यः सत्यमेव विशिष्यते॥

भाषार्थ–हे शिष्य! ऊपर जितने प्रमाण दिये सो केवल सत्यका प्रतिपादन करैहैं सत्यस्वर्गकी नसेनीहै न सत्यबराबर कोई तप है न यज्ञ मोक्षके लिये सत्यविमानपर बैठ नित्यानंदमें रहै झूठ न बोलै प्राण भी जाय जैसे हरिश्चंद्र राजाका सर्वस्व गया मिथ्या नहीं बोले सो सत्यकहे अब यमका तीसरा अंग अस्तेय लक्षण कहैहैं।

याज्ञवल्क्यस्मृतिः।

श्लोक–कर्मणा मनसा वाचा परद्रव्येषु निस्पृहः।
अस्तेयमिति संप्रोक्तमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥

भाषार्थ–मनकरके भी पराई द्रव्यकी अपेक्षा न करे जो भगवत्ने दिया ताहीमें संतोष इसे अस्तेय कहतेहैं योगवाशिष्ठमें "संतोषः परमो लाभः" इत्यादि।

आर्जवलक्षण।

श्लोक–विहितेषु च द्रव्येषु मनोवाक्कायकर्मणा।
प्रवृत्तौ वा निवृत्तौ वा एकरूपत्वमार्जवम्॥

ठीक वैसा ही बन जाता है" ऐसा भगवान का भी वचन है। क्रोधी भाव से क्रोधी, कामी भाव से कामी, अभिमानी भाव से अभिमानी, व्यभिचारी भाव से व्यभिचारी, प्रेमी भाव से प्रेमी; ब्रह्मचारी भाव से ब्रह्मचारी व ईश्वरीय भाव से मनुष्य भी निसन्देह ईश्वररूप बन जाता है। वास्तव में मन जिसका ध्यान करता है, वह तद्रूप ही बन जाता है। दोषवर्णन से मनुष्य जैसा दोषी बन जाता है, वैसे ही सद्गुण वर्णन से मनुष्य भी निस्सन्देह सद्गुणी बन जाता है। तब फिर भगवान् के गुण वर्णन करने से और उसी का नियम पूर्वक ध्यान करने से हम प्रत्यक्ष भगवद्रूप ही क्यों न बन जाँयगे ? अवश्य बन जायँगे। यदि हम हनुमान जी का ध्यान और गुणगान करेंगे तो हम भी उन्हीं के समान भक्त व ब्रह्मचारी अवश्य बन जाँयगे। अतएव ब्रह्मचारी को चित्त-शुद्धि के लिये रोज "नियम-पूर्वक सुबह शाम दोनों वक्त भगवद्भजन, पूजन, स्मरण ध्यान आदि अवश्यावश्य करना ही चाहिये; क्योंकि भगवान कहते हैं "मेरी भक्ति करने वाले मेरे ही स्वरूप में आकर मिलते हैं और स्त्री की भक्ति करने वाले स्त्री-रूप में वा शूकर कूकर के रूप में जा मिलते हैं। "विषय विरक्त" बस, इसी एक शब्द में संपूर्ण ब्रह्मचर्य का सार भरा हुआ है जो कि "भगवद्भक्ति" से हर किसी को सहज ही में "निसन्देह" प्राप्त होती है। आत्मोद्धार चाहने वालों को अवश्य अनुभव करना चाहिये।

भोजन के प्रत्येक कौर से जैसे भूख की शान्ति व शरीर की पुष्टि तथा कान्ति बढ़ती जाती है, वैसे ही ज्यों ज्यों भक्ति का सेवन किया जाता है, त्यों त्यों विरक्ति व मुक्ति भी मनुष्य को निस्सन्देह प्राप्ति होती रहती है।

भाषार्थ-अन्तः शौच बाह्यशौच दो प्रकारकेहैं मृत्तिकादिकसे हाथ धोना तडागादिमें स्नान ये बाह्यशौच प्राणायाम षट्कर्म जो हठयोगमें कह आयेहैं पहिले तिनसे अन्तःशुद्धि ये शौचलक्षण इति ।

गौतमसंहितायाम् ।

श्लोक-त्रिकालं स्नानहीनो यः संध्योपासनवर्जितः ।
स विप्रः शूद्रतुल्यो हि सर्वकर्मबहिष्कृतः ॥

भाषार्थ-जो ब्राह्मण त्रिकाल स्नान और त्रिकाल संध्योपासनादि नहीं करता वह ब्राह्मण शूद्रवत्है ।

ब्रह्मचर्य्यलक्षण दक्षसंहितामें ।

श्लोक-स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् ॥
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेवच ॥
एतन्मैथुनमष्टांगं प्रवदंति मनीषिणः ।
न ध्यातव्यं न वक्तव्यं न कर्तव्यं कदाचन ॥
एतैः सर्वैर्विनिर्मुक्तो यतिर्भवति नेतरः ।

भाषार्थ-आठ अंग मैथुनके हैं सो इनते बचै सो ब्रह्मचर्य स्त्रीको मनमें स्मरण न करे मुखसे कीर्तन न करे स्त्रीसे एकांतमें बात न करै हास्य अंगस्पर्श भोगका मनमें संकल्प भोगका उपाय या भोगकरना आठअंग हैं ।

मनुस्मृतौ ।

श्लोक-न संभाषेत्स्त्रियं कांचित्पूर्वं दृष्ट्वा च न स्मरेत् ।
कथां च वर्जयेत्तासां न पश्येल्लिखितामपि ॥

भाषार्थ-ब्रह्म चारीको चाहिये स्त्री न देखे न कागदपै स्त्रीके चित्र देखे न उसका चरित्र सुने न मनमें स्मरण करे यह ब्रह्मचर्य लक्षणहै ।

मिताहारलक्षणहठयोगप्रदीपिकामें ।

श्लोक-सुस्निग्धमधुराहारश्चतुर्थांशविवर्जितः ।
भुज्यते शिवसंप्रीत्यै मिताहारः स उच्यते ॥

"नित्य नियमावली का पाठ"

नियम पच्चीसवाँ :—

रोज़ प्रातः इस ब्रह्मचर्य की नियमावली का अवलोकन व पठन करना कभी न भूलना चाहिये; क्योंकि इसी में ब्रह्मचर्य रक्षा का सार है—इसीमें चेतावनी है इसीमें ब्रह्मचर्य के संस्कार है। नियमावली को एक बार "प्रातःकाल में रोज़ देखो ? वहुत उपकार होगा। हम विश्वास दिलाते हैं कि यह आपका "नियम दर्शन वा पठन कभी निष्फल नहीं होगा," तुम्हें वह अवश्य वलपूर्वक सन्मार्गपथ पर घसीट कर ले आवेगा। इतना ही नहीं वल्कि यदि कोई इस नियमावली का सतत एक वर्ष तक पाठ शुरू रक्खेगा तो उसमें क्या ही ऊँचे भाव पैदा होंगे इसका खुद उसी को अनुभव हो जावेगा, हाथ कंगन को आरसी क्या ? हम प्रतिज्ञापूर्वक कह सकते हैं कि यह पचीस नियम वा 'ब्रह्मचर्य-नियम पचीसा' मुर्दे को भी चैतन्यमयी वना सकता है! वस ! इससे अधिक क्या कहें ! स्वयं अनुभव कीजिये ! ॐ ! इति !

१९—सम्पूर्ण सुधारों का दादा ब्रह्मचर्य्य

आजकल देश भर में शूरों की सेना बढ़ रही है। जिसे देखो वही व्याख्यानदाता और देशसुधारक बनता फिरता है। इधर-उधर मण्डूकमंडली का टर्र टर्र कोलाहल सुनाई दे रहा है। कागज़ी घोड़ों के खुरों की खनखनाहट जोर शोर से कानों में घुस रही है।

भाषार्थ—धर्मशास्त्रादि ग्रन्थोंमें कृच्छ्र चान्द्रायणव्रत अमावसते पूर्णिमा तक इसमें भोजन घटते बढते ऐसे बहुत तप हैं शरीरदुर्बल सो तप नहीं मनसे तपै।

दानलक्षणं संवर्तसंहितायाम्।

श्लोक—सर्वेषामेव दानानामन्नदानं परं स्मृतम्।
सर्वेषामेव जंतूनां यतस्तज्जीवितं फलम्॥
यस्मादन्नात्प्रजाः सर्वाः कल्पेऽकल्पे सृजत्प्रभुः।
तस्मादन्नात्परं दानं न भूतं न भविष्यति॥

भाषार्थ—सर्वोपरि अन्नदान श्रेष्ठ ऐसा ऋषीनको संमत है पृथ्वी आदि दानते विद्या दानसे अन्नदान श्रेष्ठहै।

शास्त्रश्रवणलक्षण याज्ञवल्क्यसंहितामें।

श्लोक—वेदांतश्रवणं प्रोक्तं सिद्धांतश्रवणं बुधैः। इति।

भाषार्थ—वेदांत उपनिषद सुनना ये ज्ञानके सहायक भागवतादि पुराण-भक्तिके वृद्धिकारक स्मृतिमें धर्मकी वृद्धि सो उनको महाजनोंसे सुनना चाहिये।

आस्तिकलक्षणमुपानिषदि।

मूल—धर्माधर्मेषु विश्वासो यस्तदास्तिक्यमुच्यते। इति।

भाषार्थ—धर्ममें प्रीति तथा अधर्म निवृत्तिमें रुचि शास्त्रवाक्य मंत्र गुरुवाक्य संतमहात्मावोंका उपदेश तिसमें विश्वास सो आस्तिक्य।

पूजालक्षण श्रुति।

"आत्मध्यानंमानसिकार्चनं" बुधः।

भाषार्थ—आत्माका अंतःकरणमें ध्यान तथा परमात्माकी मूर्तिका मन-द्वारा पूजा करे बाहर भगवन्मूर्ति यथा शालग्रामशिला वा अन्यदेवमूर्ति पाषाण वा धातु या चित्र इनकी षोडशोपचार पूजा करे।

व्रतलक्षणश्रुतिमें।

"एतैर्व्रतैरपि हेयुर्महापातकिनो मुक्ता भवेयुः।

किये सप्तजन्म में भी प्राप्त नहीं हो सकता, यह भी उतना ही सत्य सिद्धान्त है। अपने को नेता समझने वाले बड़े बड़े लोग आज दो चार ही नहीं वलिक सैकड़ों सुधारों के पीछे पड़े हैं। क्या सामाजिक, क्या धार्मिक, क्या व्यवहारिक, कोई भी सुधार क्यों न हो, परन्तु विना इस एक विषय में अर्थात् ब्रह्मचर्य में सुधार किये, कोई भी सुधार कदापि चिरस्थायी व यशस्वी हो नहीं सकता यह सिद्धान्त वाक्य हमें हृदय पट में अंकित कर वा अपनी दृष्टि के समाने वड़े वड़े अक्षरों में टँगवा कर रखना चाहिये और रोज उसका दर्शन करना चाहिये। क्षणिक सुधार किस काम का? पानी पर लकीरें खींचने से क्या मतलव व जड़ को छोड़ कर डाल और पत्तियों पर पानी छिड़कने से क्या लाभ? यह नितान्त सत्य है कि, सम्पूर्ण सुधारों की और यश की कुंजी एक मात्र ब्रह्मचर्य ही है। विना वीर्यधारण किये कोई भी जाति कदापि उन्नत नहीं हो सकती। निर्वीर्य जाति दूसरों की सदा गुलाम ही बनी रहती है। यदि हमें गुलामी को जड़ मूल से हटाना हो, हमें स्वतंत्र, सुखी, सत्ताशाली और वैभवसपन्न बनना हो, और पहले की तरह पुनः श्रेष्ठ बनना हो तो हमें पहले के समान पुनः वीर्यसम्पन्न अवश्य ही बनना होगा! बिना ब्रह्मचर्य धारण किये हम कदापि पूर्व वैभव प्राप्त नहीं कर सकते। ब्रह्मचर्य ही सम्पूर्ण उन्नति का वीज मंत्र है! ब्रह्मचर्य ही सम्पूर्ण सुखों का निधान है!! ब्रह्मचर्य ही एक मात्र सम्पूर्ण सुधारों का दादा है!!!

भाषार्थ–तिन चौरासीनमें चार आसन मुख्य यथा सिद्धपद्मसिंहभद्र ये चार इनमें भी गोरखनाथयोगीने मुख्य दो ही आसन मानेहैं सिद्ध और पद्म सो कहै हैं।

गोरखपटलमें।

श्लोक–योनिस्थानकमंघ्रिमूलघटितं कृत्वा दृढं न्यस्य च
मेढ्रे पादमथैकमेव हृदये कृत्वा हनुं सुस्थिरम्॥
स्थाणुः संयमितेन्द्रियोऽचलदृशा पश्येद्भ्रुवोरंतरं।
ह्येतन्मोक्षकपाटभेदजनकं सिद्धासनं प्रोच्यते॥

भाषार्थ–प्रथम वामपादकी एडी गुदा और लिंगके मध्य स्थानमें करे और दक्षिणपादकी लिंगके ऊपर स्थानमें स्थापन करे मुखकी ठोडी हृदयमें लगावे सब इंद्रियोंकूं जीत अचलहो दृष्टि दोनों भौहोंके मध्यमें रोपै इसे मोक्षका द्वार कपाटभेदन सिद्धासन योगीजन कहैहैं ग्रंथविस्तारके भयते और आसन नहीं कहे।

प्राणायाम ४ अङ्गयोगदर्शनमें।

सूत्र–तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायाम इति।

भाषार्थ–सिद्धासनमें बैठ श्वास या प्रश्वासको रोकना तिसे योगीजन प्राणायाम कहतेहैं सो ताकी तीन वृत्तिहैं।

सूत्र–बाह्याभ्यंतरस्तंभवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टोदीर्घसूक्ष्मो।इति।

भाषार्थ–इससूत्रका अर्थ यह याने प्राणायाममें तीन वृत्तिहैं बाह्य आभ्यन्तर दो स्तंभस्वरूपहैं सूक्ष्मस्थूल सो प्राणायाम तीन प्रकारकाहै रेचक-पूरक कुम्भक।

अमृतविन्दूपनिषदि प्राणायामरेचकलक्षणम्।

श्लोक–उत्क्षिप्य वायुमाकाशं शून्यं कृत्वा निरात्मकम्।
शून्यभावेन युंजीयाद्रेचकस्येति लक्षणम्॥

रही है। भाइयों! अपनी इस परमप्यारी भारत माता को अब दास्य से मुक्त कीजिये, उसका वैभव उसे पुनः प्राप्त कर दीजिये! भारत की स्वतंत्रता एक मात्र हमारी स्वतंत्रता के ऊपर सर्वथा निर्भर है और हमारी स्वतंत्रता एक मात्र विषय की गुलामी छोड़ने में अर्थात् पूर्वजों की तरह वीर्य धारण करने ही में है।

जैसे कोई गत-वैभव असहाय विधवा अपने एकलौते पुत्र पर सुख की आशा रखकर दुःख में दिन विताती है, उसी प्रकार यह परम दुखी भारत-माता भी तुम जैसे बालकों पर सुख की आशा रखकर जीवन धारण किये हुये है और बड़े कष्ट व आपदा को सह रही है। वह अब कहां तक धीर पकड़ेगी मालूम नहीं।

चेतावनी

"तू सिंहशावक हिन्दबालक! छोड़ अपनी भीरुता।
पूर्वजों के तुल्य जग में अब दिखा दे वीरता॥ १॥
"वीर्य ही में वीरता है वीर्य धारण अब करो।
आर्यमाता दास्य में है दुःख उसका तुम हरो॥ २॥
"प्राणधारण कर रही है बाट अपनी ढूँढ रही।
हाय! तौ भी हिन्दजनता विषयसुखमें सो रही॥ ३॥
"घोर निद्रा छोड़ करके जग उठो अब एक दम।
आर्यपुत्रो! शीघ्रता से अब बढ़ाओ निज कदम॥
"दासता से मृत्यु अच्छी दीनता को फेंक दो।
राज्य अपना आत्म-बल से प्राप्त कर दिखलाय दो॥

भाषार्थ--मनके हरनेवाले इनते दूर रहै यथा खीर पूरी मोहनभोग स्त्रीको न देखै वस्त्र सुवर्णके भूषण इत्यादि ये विषयके सहायक इनते दूर रहै इनते अंतःकरणमें भी प्रीति न करे योगी सो प्रत्याहारहै ।

धारणालक्षण ६ अंग ।

श्लोक--यस्तु तिष्ठति कौंतेय धारणासु यथाविधि ।
मरणं जन्म दुःखं च सुखं चापि विमुच्यते ॥

भाषार्थ—पुरुषको चाहिये कि प्रथम चित्तको सावधान करे फिर जावस्तु को धारे उसे त्यागै नहीं जैसे पनिहारीके शिरपर जलघट उममें सुरति चलतीहै बतातीहै तैसे ही जानों तो जन्ममरन दुःखसे छटकर परमगतिको प्राप्त होगे प्रमाण ।

पातंजलयोगसूत्र ।

सूत्र–देशबंधश्चित्तस्य धारणा । इति ।

भाषार्थ--यह चित्तको किसी एक जगह स्थित करे जैसे अंःकरणमें चक्रादिकोंके शोधनमें या भगवद्गुणानुसंधान तिसे धारणा कहतेहैं ।

ध्यानलक्षण ७ अङ्ग पातंजलमें ।

सूत्र—तत्र प्रत्यैकतानता ध्यानम् । इति ।

भाषार्थ—जो आपना ध्येयपदार्थ परमात्मा ताके स्वरूपके ध्यानमें मग्न रहना चित्त तहांते न हटै सो ध्यान कहाताहै तहां पुनःप्रमाण।

मुंडकोपनिषादि ।

मूल—ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः । इति ।

भाषार्थ—मनशुद्ध एकाग्र जाका सो परमात्माके ध्यान करनेमें तदाकारवृत्ति जाकी ऐसा पुरुष परमात्माको प्राप्त होताहै यह ध्यानहै इति ।

समाधिलक्षणअंग ।

सूत्र—तज्जयात्प्रज्ञालोकः ।

भाषार्थ—ध्येयपुरुषके विषय चित्त जाका लयहो यह शरीर शून्य जडवत्

"बचाओ उसे जोश जी में भरो,
उठो भाइयो ! वीर्य रक्षा करो ॥ ४ ॥

वीर्य रक्षा ही आत्मोद्धार है । वीर्य रक्षा ही देशोद्धार है !! वीर्य रक्षा ही स्वर्गद्वार है !!! संपूर्ण गुलामिओं से मुक्ति पाने का एक मात्र दिव्य साधन है ।

"किस काम की नदी वह जिसमें नहीं रवानी ।
जो जोश ही न हो तो किस काम की जवानी ॥१॥

बस प्यारे ! सब की जड़ एक मात्र ब्रह्मचर्य ही है । ब्रह्मचर्य ही से ब्रह्म की प्राप्ति होती है और ब्रह्मचर्य ही से मनुष्य काल को जीत लेता है । इसके लिये वेद का प्रमाण—

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत् ।
इन्द्रोह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत् ॥ १ ॥

अथर्ववेद १-५-१९

"ऋषियों ने ब्रह्मचर्य के तप ही से मृत्यु को जीत लिया और ब्रह्मचर्य ही से उन्हें आत्मप्रकाश भी हुआ है अर्थात् वे ईश्वरत्व को प्राप्त हुये हैं ।"

"उत्तिष्ठत ! जाग्रत !! प्राप्यवरान्निबोधत !!!
"उठो ! जागो !! और सद्बोध रूपी,
इस महाप्रसाद का यथेष्ठ सेवन करो !!!
ॐशान्तिः पुष्टिस्तुष्टिश्चास्तु । ब्रह्मार्पणमस्तु !

ॐ ।

सुषुम्णायां स्थिताः सर्वे सूत्रेमणिगणा इव ।
मोक्षमार्गप्रतिष्ठाना सुषुम्णा विश्वरूपिणी ॥
यथैव निश्चितःकालश्चंद्रसूर्य्यनिबंधनात् ।
आपूर्य्य कुंभितो वायुर्बहिर्नो याति साधके ॥
पुनःपुनस्तद्वदेव पश्चिमद्वारलक्षणम् ।
पूरितस्तुस तद्वारैरीषत्कुंभकतां गतः ॥
प्रविश्य सर्वगात्रेषु वायुः पश्चिममार्गतः ।
रेचकक्षीणतां याति पुनः संपूरयेत्ततः ॥ इति ॥

भाषार्थ–हे शिष्य ! जो द्वार पश्चिमकाहै सुषुम्णाके तीर उसे वायु आच्छादित करैहै वज्रनालमें सुषुम्णा मिलिके मेरुदंडके भीतर भिदी जैसे मालाकी गुरिया सूतमें पुही तैसे सब अंगमें नाडी तिनको शुद्ध कर फिर सुषुम्णाद्वारा प्राणविजय कर शब्दनादश्रवण ब्रह्मरंध्रपै सुनै ताको पकरि सुरति आगे चलै जैसे बोलनेवालेकी आवाज सुन वही ओर पुरुष चलताहै तैसे सुरति शब्दको पकरि जात सो नाद नाडीशुद्धि विना नहीं सुनिबेमें आता सो अब प्रथम नाडिनका भेद सुनो ।

अथर्वप्रश्नोपनिषदि ।

मूल–अत्रैतदेकशतं नाडीनां तासां शतं शतमेकैकस्याः ।
द्वासप्ततिर्द्वासप्ततिः प्रतिशाखं नाडीसहस्राणि ॥

भाषार्थ–इस शरीरमें एकसौ नाडी मुख्यहैं तिनमें सौ सौ शाखा नाडी निकसी पुनः तिन नाडीशाखावोंते एक एकते बहत्तर बहत्तर नाडी ऐसे बहत्तरहजार नाडी इस शरीरमें हैं प्रमाण योगचूडामणौ "द्विसप्तसहस्राणिप्रतिनाडीषुतैतिलम्" शरीरका आधार मस्तकहै तामें सब नाडीनका आधार सुषुम्णाका वासहै अब तिनमें मुख्य दशाहैं ।

गोरक्षशतके ।

श्लोक–इडा च पिंगला चैव सुषुम्णाथ तृतीयका ।
गांधारी हस्तिजिह्वा च पूषा चैव यशस्विनी ॥

पातञ्जल योग-सूत्र में योग के आठ अङ्ग बतलाये हैं। यथा—

"यमनियमासन प्राणायाम, प्रत्याहार धारणाध्यान।
समाधियोऽष्टावङ्गानि"

अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारण, ध्यान और समाधि। इनमें भी आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान और समाधि ये पांच अंग ही मुख्य माने गये हैं। प्राचीन काल में हमारे देश में थोड़ा बहुत योग का अभ्यास रखने का प्रचलन था। इसी कारण उस काल में हमारे पूर्वज मानसिक और शारीरिक बल प्राप्त करके पूर्ण स्वस्थ रहते और पूर्णायु को प्राप्त होते थे। जिन रोगों पर औषधियाँ काम न देतीं थीं, योग-साधन से वे उन रोगों से भी मुक्त हो जाते थे। अविद्या से ज्यों ज्यों शनैः शनैः योग-विद्या का लोप होता गया, देशवासियों ने स्वास्थ्य और फलतः दीर्घायु का दिवाला निकाल दिया। आसन और प्राणायाम योग के सब से मुख्य अङ्ग माने गये हैं। कितने खेद की बात है कि इन दोनों के दोनों योग-साधनों का लोप सा होगया है। अनेक धार्मिक सज्जन महानुभाव प्राणायाम तो येन केन प्रकारेण कर भी लेते हैं, पर योगासनों का तो सर्वथा लोप होगया है। पर प्राणायाम आत्म-शुद्धि के लिए जितना आवश्यक है, योगासन शारीरिक विकास के लिए उससे भी अधिक उपयोगी है। कहा भी है—

"आसनानि समस्तानि, यावन्तो जीव जन्तवः
चतुरशीति लक्षाणि, शिवेनकथितंपुरा॥

योगासनों का अभ्यास शौच, स्नान, व्यायाम आदि से निपट कर विना कुछ खाये-पिये, प्रातःसायं ऐसे स्थान पर करना चाहिये,

जाबालोपनिषदि ।

श्लोक-ऊर्ध्वं मेढ्रादधो नाभेः कंदयोनिः खगांडवत् ।
तत्र नाड्यः समुत्पन्नाः सहस्राणां द्विसप्ततिः ॥

भाषार्थ-लिंगदेशके ऊपर नाभिके किंचित् नीचे कंदका स्थानहै तहांते नाडीनकी उत्पत्ति तिनमें सुषुम्णाका भिन्न स्थानहै सो ताको सुनो ।

सौभरिऋषिकृतयोगदीपिका ।

श्लोक-चतुरंगुलविस्तारमायामं च तथाविधम् ।
अंडाकृतिवदाकारं भूषितं च त्वगादिभिः ॥

भाषार्थ-मनुष्यके लिंग और गुदाके नीचेमें सिवनीहै तिसते चार अंगुल ऊपर कंदका स्थान उसका आवर्त (गुलाई) चारि अंगुलकी तिसकी आकृति मुरगीके अंडेके समान सो चारों ओर कफसे घिराहै सो ताके मध्यस्थानमें सुषुम्णाका मूलस्थानहै ।

याज्ञवाल्क्यसंहितायाम् ।

श्लोक-कंदस्य मध्यमे गार्गि सुषुम्णा संप्रतिष्ठिता ।
पृष्ठमध्ये स्थितेनास्थ्ना सह मूर्धानमागता ॥

भाषार्थ-पूर्वोक्त कंदके मध्य हेगार्गि ! सुषुम्णाका मूल उत्पत्ति सो तहांसे सुषुम्णा पीठमें जो मेरुदण्ड ताके अंतरह्वै ब्रह्मरंध्रपर्यंत गई सो यह रहस्य गुप्तहै इसका भेद योगाभ्यासीको गुरुद्वारा समझनेमें आताहै यहां लिखनेते अर्धज्ञानी भ्रमजातेहैं अब प्राणको ऐसे चलावे वो मार्ग सुनो और सुरति सो सुषुम्णाके मूलस्थानते षट्चक्रोंको भेदन कर फिर ऊपर तालुके एकसहस्र दल कमल तापै जाय स्थितहो परन्तु कण्ठमें जो चक्र तहांते दो मार्ग हैं । पूर्वमार्ग पश्चिममार्ग सो सुषुम्नाके दो भेदहैं तिनमें जो पश्चिममार्ग सो ग्रीवाके पीछे जो स्थित मेरुदंड तिसके द्वारा भी प्राण ब्रह्मरंध्रविषे जावैहै और पूर्वमार्ग सो भ्रूमध्यदेश विषे जो आज्ञाचक्र उसके द्वारा जो ब्रह्मरंध्रपै जावे इन दोनोंमें पश्चिममार्ग श्रेष्ठ ऐसा योगियोंका मत है प्रमाण ।

रखना आवश्यक है कि पीठ की रीढ़ सीधी रहे। पीठ की रीढ़ में शरीर की सारी नसें फैली हुई हैं। इसी को मेरुदंड कहते हैं। शरीर का यही मूलाधार है। साधारण रूप से चलते फिरते समय भी इसको सीधा रखना चाहिये।

यह आसन एक मास के निरन्तर अभ्यास से लाभप्रद सिद्ध होता है। पर इस आसन का अतिशय अभ्यास हानिकारक भी होता है क्योंकि यह आसन कामोत्तेजन का नाशक है। अतिशय अभ्यास से इसका प्रभाव सन्तानोत्पादन शक्ति को इतना क्षीण बना देता है कि काम बिल्कुल शान्त पड़ जाता है। और पुरुष स्त्री के काम का नहीं रह जाता। पर इस भय से इस आसन का करना ही स्थगित कर देना ठीक नहीं है। ब्रह्मचर्य्य के लिए यह आसन अतीव लाभकर है। अति तो सर्वत्र और सर्वदा वर्जित है। इसलिए इसका थोड़ा अभ्यास अवश्य रखना चाहिये।

(२) पद्मासन

इस आसन में भी पहले पल्थी मारकर बैठ जाइये, फिर दाहिने पैर को बाईं जाँघ पर और बायें पैर को दाहिनी जाँघ पर जमा दीजिये। फिर बाँया हाथ बायें घुटने पर और दाहिना हाथ दायें घुटने पर रखिये। इस आसन में पीठ, गला, सिर, रीढ़ बिल्कुल सीध में होनी चाहिये। अपनी दृष्टि को भौहों के बीच या नासिका पर लगा देना चाहिये।

है इसकारण जो योगी प्राण और आत्मा दशमद्वार लेजाया चहै सो वह विना सुषुम्णा भेदन दशममें नहीं जायँगे तिसकूँ बंधमुद्राद्वारा कुंडलनी हठावे तो योगी सुषुम्णाद्वारा मोक्षको प्राप्त होगा सो बंध तीन प्रकारके हैं उड्डियानबंध, मूलबंध, जलंधरबंध, सो तीनोंके लक्षण भिन्नकर सुनो ।

उड्डियानवन्धलक्षणम् ।

श्लोक-उदरे पश्चिमतानं नाभेरूर्ध्वं च कारयेत् ।
उड्डियानो ह्यसौ बंधो मृत्युमातंगकेसरी ॥

भाषार्थ-प्राणको रेचकपूर्वक उदरके दहिने तरफ आकर्षण करे नाभिकूँ किंचित् ऊर्ध्वं ऊपरको आकर्षण करे यह मृत्युमत्तगजको सिंहसम उड्डियान बंध है ।

जलंधरबन्धलक्षणम् ।

श्लोक-कंठमाकुंच्य हृदये स्थापयेच्चिबुकं दृढम् ।
बंधो जलंधराख्योयं जरामृत्युविनाशकः ॥

भाषार्थ-कंठको संकोच कर ठोडी हृदयमें लगावे दृढ करे यह जलंधर बंधहै ।

मूलबन्धलक्षणम् ।

श्लोक-पार्ष्णिभागेन संपीड्य योनिमाकुंचयेद्गुदम् ।
अपानमूर्ध्वमाकृष्य मूलबंधोभिधीयते ॥

भाषार्थ-सिद्धासनपूर्वक वामपदकी येडी गुदा और लिंगके मध्यमें जाको योनिस्थान कहतेहैं ताको पीडन कर अपानवायु ऊपरको चढावे गुदाद्वारा आकुंचन करना यह मूलबंधहै उड्डियान बंध प्राणरेचनकालविषे करे जालंधर प्राणायामके कुंभकके समय करे मूलबंध प्राणके पूरककालमें करै इन तीनोंसे कुंडलनीको बोध होगा उड्डियान मूलबंधते अपानवायु ऊर्द्ध्वगामी होगी तासे जठरानल प्रदीप्त होगी सो जठरानलकी उष्णतासे जो गरमी

चित्र नम्बर २
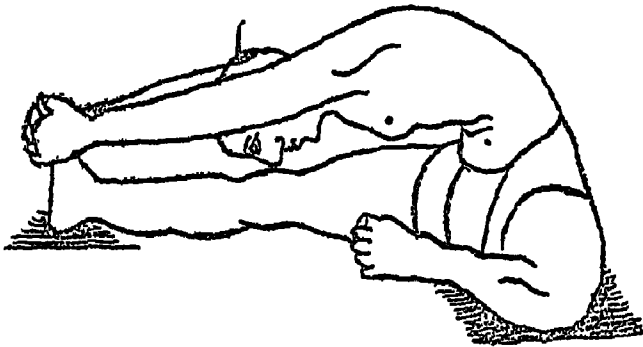
जानुशिरासन

मोक्षं केचिन्मनोलयं मोक्षं केचित् महावाक्यकथनमात्रंमोक्षं केचिद् अहं ब्रह्म मोक्षं केचिद् सोहमस्मि मोक्षं केचिन्नानादर्शनं मोक्षं कथयंति ।

भाषार्थ–हे शिष्य! कोई तो रूपरहित होना उसीको मोक्ष कोईका मत साकार कोई शून्य कहताहै कोईका मत कि एकादशीव्रत सोई मोक्षका कारण कोई भक्ति मोक्षका कारण कोई मनका लय मोक्ष मानताहै कोई तत्त्वमसि इसका अर्थ वही मोक्ष जो तू मैं अभेद कोई मैं ब्रह्महूं कोई नाना तीर्थभ्रमण ऐसा मानतेहैं परंतु ये सब सत्यहैं मिथ्या नहीं इनका सारभूतपै लक्ष्य नहीं केवल मुखके कथनते नहीं होवे यहां अहंकारसे नहीं कार्य बने अपने अपने मतमें भ्रमैहैं ।

श्लोक–योगी देहाभिमान्येव भोगी कर्मणि तत्परः ।
ज्ञानी मोक्षाभिमान्येव तत्त्वज्ञानाभिमानतः ॥

भाषार्थ–हे शिष्य ! देखो अहंकार ही बंधनका कारण तामें तो सब फँसे और मोक्षकी इच्छा सो कैसेबनै योगीजनोंको देहका अभिमान भोगी जन यज्ञादि कर्म करते तिसमें स्वर्गका भोगहै ज्ञानी जिनको कहते हैं वे अपनेको मुक्त समझ रक्खा तो अब मोक्षको कौन पूछे और कोई बातपै निश्चय नहीं ताको सुनो ।

श्लोक–कर्मयोगाश्चविद्वांसःस्वःप्राप्तिंचांतरालयम् ।
सत्यवैकुंठकैलासान्क्षीराब्धिसाकेतयोस्तथा ॥
विश्वरूपंचैतन्यमेतन्मायास्वरूपकम् ।
मायापरेभवेद्ब्रह्म तत्परे ब्रह्म केवलम् ॥

भाषार्थ–हे शिष्य! सुनो कर्मकांडी स्वर्ग प्राप्तिको ही मोक्ष योगी अंतकरण मेंही मोक्ष धाम मानतेहैं कोई कैलासकी प्राप्तिको कोई वैकुंठकी प्राप्तिको कोई

(४) पादांगुष्ठासन

इस आसन में किसी एक पैर की एँड़ी को गुदा और अंडकोष के मध्यभाग में लगाकर शरीर के समस्त भार को उसी पर छोड़ दीजिये। दूसरे पैर को घुटने के ऊपर रखिये। अगर सहारे की आवश्यकता हो तो या तो एक हाथ का सहारा लीजिये, या दीवार का।

इस आसन का प्रभाव बहुत शीघ्र होता है। इसके अभ्यास से कैसा ही स्वप्नदोष हो दूर हो जाता है। पर इस आसन को ब्रह्मचारी ही को करना चाहिये। गृहस्थों के लिए इसका निरन्तर अभ्यास करना विशेष हितकर न होगा। स्त्रियों के लिए यह आसन वर्जित है।

(५) शीर्षासन

इस आसन में सिर के बल खड़ा होना होता है। इसलिए या तो एक गदेला रख लेना चाहिये, या किसी वस्त्र की ऐसी गिंडुई बना लेना चाहिये जो सिर के बल खड़े होने में सहायक हो। मतलब यह है कि इस आसन के समय सिर के नीचे सख़्त ज़मीन नहीं होनी चाहिये। सख़्त ज़मीन होने से मस्तिष्क पर दुष्प्रभाव पड़ने का भय रहता है। इसलिये यही अच्छा है कि इसका आसन बहुत मुलायम और गुदगुदे धरातल में करें। प्रारम्भ में यह आसन दीवाल का सहारा लेकर किया जाता है। अगर इस आसन को

बाहर विरजाहै परंतु ये सब ब्रह्मांडकी लीला कालके अधीनहैं कालमें स्थिति और कालमें ही नाश होताहै उसी कालके चारयुग सतयुग त्रेता द्वापर कलियुग ये चारों एक एक हजार बीतजायँ तब ब्रह्माका एक दिन होताहै ऐसे जब ब्रह्माकी रात्रि होतीहै तब प्रलय जब सौ वर्ष ब्रह्माके होतेहैं । तब महाप्रलय होताहै तब ब्रह्माका नाश होताहै तब सृष्टि सबलोक ब्रह्मांड तिन्हें कालाग्नि भस्म करदेताहै सो सब प्रकृति याने मायामें लय सो माया विष्णुमें लय होती है फिर इच्छाते उत्पत्ति होती है सो इनते वो स्थान दूर और विलक्षण है सो सुनो महादेववाक्य।

पद्मपुराणे।

श्लोक–त्रिपाद्विभूतिरूपंतु शृणुभूधरनंदिनि ।
प्रधानपरमव्योम्नोरंतरे विरजानदी ॥
वेदांगस्वेदजनिततोयैः प्रस्राविता शुभा ।
तस्याःपारे परव्योम्नि त्रिपाद्भूतिसनातनी ॥
अमृतं शाश्वतं नित्यमनंतं परमं पदम् ।
अनेककोटिसूर्याग्नितुल्यता नैव भव्यगे ॥
सर्ववेदमयं शुद्धं सर्वं प्रलयवर्जितम ।
असंख्यमजरंनित्यं जाग्रत्स्वप्नादिवर्जितम् ॥
हिरण्मयं पदं ब्रह्म ब्रह्मानंदसुखावहम् ।
समानाधिक्यरहितमाद्यंतरहितंशुभम् ॥
तेजसात्यद्भुतं रम्यं नित्यमानंदसागरम् ।
एवमादिगुणोपेतं ततः सर्वोत्तमं पदम् ॥

भाषार्थ–महादेवजी कहैहैं कि हे पार्वती ! तुम एकाग्र चित्त कर सुनो जहांको चेतन जाय आवता नहीं सो विरजाके पार त्रिपादविभूति नाम ऐसा धाम है कैसाहै वो नित्यहै कोई कालमें नाश नहीं शुद्धसत्त्व है वहां तीनों

चित्र नम्बर ४

आसन व

शीर्षासन

इस आसन में
तो एक गदेला रख ले
बना लेना चाहिये जो
मतलब यह है कि इस
नहीं होनी चाहिये। सख्त
का भय रहता है। इसलि
मुलायम और गुदगुदे धर
दीवाल का सहारा लेकर।
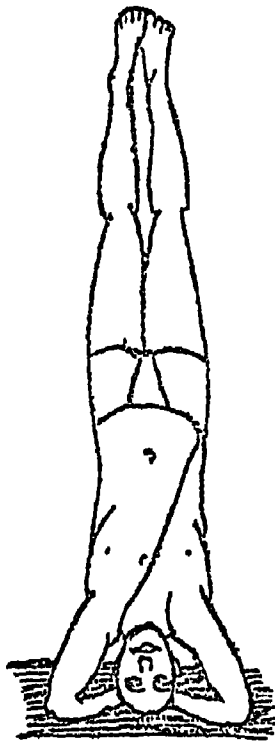
भाषार्थ–हे पार्वतीजी ! उस धामकी ब्रह्मा विष्णु तथा हम भी इच्छा करते हैं और वो अतिगोप्य स्थानहै ताको ज्ञान तथा योगमार्गद्वारा योगी भगवद्भक्त ही प्राप्त होतेहैं सो बात उपनिषदोंमें प्रमाण मानी जातीहै त्रिपाद विभूति उपनिषदमें तथा आश्वलायन शाखामें ऋग्वेदमें ।

"तद्विष्णोःपरमंपदंसदापश्यन्तिसूरयःदिवीवचक्षुराततम्" इत्यादि ।

भाषार्थ–सो विष्णुका भी परमपद स्थान ताको सूरि अर्थात् नित्य-मुक्त जिनकी वासनाका नाश हुआ ऐसे दिव्यदृष्टि शुद्ध चैतन्य सो तहांको प्राप्त होतेहैं तहांके अधिपतिका कैसा स्वरूपहै ताको कहैहैं ।

पद्मपुराणे ।

श्लोक–अत्र हंत परं धाम गोपवेषो जगत्पतिः ।
तद्भाति परमं धाम गोभिर्गोपैः सुखाह्वयम् ॥
तत्पदं ज्ञानिनो विप्रा यांति संन्यासमिच्छवः ।
तद्विष्णोः परमं धाम मोक्ष इत्यभिधीयते ॥

भाषार्थ–सो परम धामके विषे श्रीहरि भगवत् सच्चिदानंद जिन्हें श्रीकृष्ण कहतेहैं ते गोपवेष याने मोरपंखका मुकुट वनमाला मुरली हाथमें विरा-जमान गोप भक्तजन कर शोभितहैं । तहांको ज्ञानद्वारा निश्चय होयहै सो धाममें प्राप्त ते मोक्ष होयहैं यह विधि सो अब तहांके प्राप्ति होनेके मार्गमें कौन कौन स्थान कौन कौन लोक परैहैं ताको अर्चिरादि मार्ग कहतेहैं सो सुनो ।

सदाशिवसंहितायाम् ।

श्लोक–महर्लोकः क्षितेरूर्ध्वमेककोटिप्रमाणतः ।
कोटिद्वयेन विख्यातो जनलोको व्यवस्थितः ॥
चतुष्कोटिप्रमाणं तु तपोलोको विराजितः ।
उपरिष्टात्ततः सत्यमष्टकोटिप्रमाणतः ॥

विशेष सूचनाएँ

१—इन योगासनों का अभ्यास करते समय लघुपाक आहार अत्यन्त आवश्यक है। कंद, मूल तथा फलों का ही आहार किया जाय तब तो बहुत ही अच्छा हो, पर साधारण रूप से गौ का दूध, चावल, खिचड़ी, दलिया, गेहूँ के मोटे आटे की रोटी, मूँग की दाल देशी सक्कर, साबूदाने की खीर, सूखी मेवा तथा हरे फल खाने चाहिये।

२—इन आसनों की जो विधियाँ ऊपर बतलायी गई हैं वे यद्यपि कुछ बहुत कठिन नहीं हैं, तथापि बिना किसी अभ्यस्त शिक्षक के इनका अभ्यास करने से लाभ के बदले प्रायः हानि भी हो जाती है। इसलिए इन्हें शिक्षक या योगी से ही सीखना चाहिये।

३—इन आसनों का अभ्यास करते समय श्वास का निकालना और ग्रहण करना—ये दोनों क्रियायें बहुत धीरे धीरे होनी चाहिये।

४—यदि शरीर में वीर्य-सम्बन्धी कोई विकार हो तो इन आसनों का अभ्यास करते समय गुदा-संकोचन पर विशेष ध्यान रखना चाहिये। वीर्य-रक्षा का यह एक मात्र अव्यर्थ महौषध है।

५—जो लोग विधिवत् ब्रह्मचारी नहीं हैं; अर्थात् जिनका विवाह हो गया है, वे भी इनका अभ्यास करके अपने शरीर को नीरोग बना सकते हैं। पर इन आसनों का अभ्यास करते समय दृढ़ संयम के साथ वीर्य-रक्षा करना अनिवार्य्य रूप से आवश्यक है।

यदंशेन समुद्भूता ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
कार्य्यकारणसंपन्ना गुणत्रयविभावकाः ॥

भाषार्थ—तप लोकसे सप्तावरण भेदन कर यह चेतन आगे चलताहै तहां वह वैष्णवोंके ईश्वर महाविष्णुका स्थान सो कैसा स्थान निरवयव निराधार याने पृथ्वी पर्वतके ऊपर नहीं तामें मणि वैडूर्य स्फटिक इत्यादिक हजारों मंडप शोभित तहां नानाप्रकारके तडाग वनयुक्त शोभित तहां नानाप्रकारके शृंगार किये स्त्रीनसहित श्वेतविष्णु नानाप्रकारके ध्वनिके बाजे बाजते तहां परम आह्लादसे सिंहासनपर विराजमान तेई विष्णुके अंशते क्षीरसागरके निवासी पद्मनाभ उत्पन्न भये तिनते ब्रह्मा विष्णु महादेव प्रतिब्रह्मांडमें होते भये सो भी स्थान विरजापार महावैकुंठ याहीको श्रीवैष्णवजन याचते अब वो स्वधामको कहेहैं जाके अंशते महावैकुंठ भी उत्पन्न जाके अंशते महाविष्णु भी हैं सो वो कौन धामहै ।

नारदपंचरात्रे ।

श्लोक—तद्भेदाः परमं धाम मदीयं पूर्वसूचितम् ।
एतद् गुह्यं समाख्यानं ददातु वांछितं हितम् ॥
तदूर्ध्वे तु परं दिव्यं सत्यमन्यव्यवस्थितम् ।
न्यासिनां योगिनां स्थानं भगवद्भावितात्मनाम् ॥
महाहरिर्मोदतेऽत्र सर्वशक्तिसमन्वितः ।
तदूर्ध्वे तु स्वयं भातं गोलोकं चाप्यतः परम् ॥

भाषार्थ—महादेवजी कहैहैं कि हे पार्वति! मैं अब उस धामका वर्णन करताहूँ जहांकी रहस्य अतिगोप्यहै ताको हम तुमते पहिले सूचित करचुके तहां योगीजन भगवत्की अनन्यता भक्तिके धारण करनेवाले वेही प्राप्त होते सो महावैकुंठते परे श्रीगोलोकधामहै जहांकी प्राप्तिसे पुनः जन्म मरण नहीं होता ताको हमसे श्रीनारदजी कहगयेथे सो तुम्हारे प्रति संक्षेपमें कहैहैं ।

विकारों को किस प्रकार वश में करना चाहिये, इसकी समुचित शिक्षा दी गई है। पुस्तक की उत्तमता एक बार पढ़ने ही से ज्ञात होगी। मूल्य ॥≈)

(४) भारतके दश रत्न—यह जीवनियों का संग्रह है। भीष्मपितामह, श्रीकृष्ण, महाराणा प्रतापसिंह, स्वामी विवेकानन्द आदि दश महापुरुषों की जीवनियाँ बड़ी खूबी के साथ संक्षेप में लिखी गई हैं। मूल्य प्रति पुस्तक का।<)

(५) ब्रह्मचर्य्य ही जीवन है—इस पुस्तक की प्रशंसा सभी पत्र-पत्रिकाओं ने की है। अधिक न लिख कर कुछ पत्र-पत्रिकाओं की सम्मतियां हम यहां उद्धृत करते हैं:—

"अभ्युदय" इस पुस्तक की विस्तृत समालोचना करते हुए अन्त में लिखता है:—"यह पुस्तक क्या है, नवयुवकों के लिये कल्पवृक्ष है। हम "अभ्युदय" के पाठकों से जोरों के साथ अनुरोध करते हैं कि वे एक बार इस पुस्तक को अवश्य पढ़ें और अपने बालकों को दें। समालोचक ने स्वयं इसे बीसों बार पढ़ा है पर तृप्ति नहीं हुई।"

"प्रताप" लिखता है—"इस पुस्तक में ब्रह्मचर्य्य के सम्बन्ध में लगभग सभी ज्ञातव्य बातों का समावेश किया गया है। ब्रह्मचर्य्य की महिमा, अष्टमैथुन, वीर्य नाश के मुख्य लक्षण, गृहस्थी में ब्रह्मचर्य्य, वीर्य्य रक्षा के नियम आदि का वर्णन अच्छे ढंग से किया गया है।''''''यह पुस्तक नवयुवकों के बड़े काम की है। हम चाहते हैं कि प्रत्येक युवक इस पुस्तक को पढ़कर लाभ उठावे।"

द्विभुजो मुरलीहस्तो निवीतो वनमालया।
कोटिमन्मथसौंदर्यजगन्मोहनविग्रहः ॥

भाषार्थ-तीन कमलके मध्य कर्णिकामें श्रीकृष्ण जी विराजमानहैं नाना प्रकारके भूषणकर अंग सुशोभितहैं और द्विभुजा तामें एकहाथमें वंशी लिये दूसरेमें सुमनकी छडी शोभित सो जिनकी विग्रहपर कोटिन कामदेव न्यवछावरि जगत्के मोहनेवाले ।

श्लोक-षोडशाब्दवयोरूपो यौवनेन विराजितः ।
विशालभालदेशं तु कुंकुमेन सुगंधिना ॥
वामांगे राधिकां देवीं नित्यं वृन्दावनेश्वरीम् ।
तस्यैव सदृशीं शक्तिं ललिताष्टसमन्विताम् ॥

भाषार्थ-सो श्रीकृष्णमहाराज जिनके वाम भागमें श्रीराधिका महाराणी विराजमान सो तिनकी आठ शक्ति श्रीललिता चंपकलता चंद्ररेखा विशाखा तुंगभद्रा इंद्रलेखा रंगदेवी सुदेवी ये अष्ट सखिनके मध्य युगुलकिशोर तथा सदा वहांके निवासी सोरह वरसके ही रहैहैं सो कोई सखी छत्र कोई चमर कोई पंखा कोई पानदान ऐसे अनगनतिन सखीजनके आवर्तमें विराजमान मंदहसन कर सबको मोहते तहां जब यह चेतन समह होताहै और युगुलमूर्तिके दर्शन कर कृतार्थ होताहै तब भगवत् आज्ञासे ताको अनेक प्रकारके अलंकारतासे शोभित कर माला प्रसाद दे सेवाका अधिकारी करते हैं सो हे पार्वति ! यह सब गुप्त रहस्य केवल महात्माओंकी कृपासे जाननेमें आवैहै सो याप्रकार श्रीमहादेवजीने पार्वतीजीसे सुनाई अब हे शिष्य! सो रहस्य भगवत्कृपा और गुरु तथा संत महात्माओंकी कृपासे हमने तुम्हें सर्व शास्त्रका सार तथा सिद्धांतनिर्विघ्नताते सुनाया सम्पूर्ण किया तासे अब कोई एक स्थलमें जाय सब बातोंका स्मरण कर मनन कर भगवत्का ध्यान करो जाय याप्रकार गुरुके अमृतवचन सुन शिष्य गद्गदहो गुरुकी परिक्रमा

बहादुर बनना चाहते हैं, तो इसे पढ़िये। इस में अपने पुरुषाओं की सच्ची वीरता पूर्ण यश गाथायें पढ़ कर आप का हृदय फड़क उठेगा। नसों में वीर रस प्रवाहित होने लगेगा पुरुषाओं के गौरव का रक्त उबलने लगेगा। स्कूल में बालकों को इतिहास पढ़ाने में अपने पुरुषाओं की वीरता पूर्ण घटनाएं नहीं पढ़ाई जाती। विदेशी पुरुषों की प्रशंसा के ही पाठ पढ़ाये जाते हैं। आवश्यकता है देश का कोई बालक ऐसे समय इस पुस्तक को पढ़ाने से न चूके। मूल्य केवल ॥)

(१०) आहुतियाँ—यह एक बिलकुल नये प्रकार की नयी पुस्तक है। देश और धर्म पर बलिदान होने वाले वीर किस प्रकार हँसते हँसते मृत्यु का आवाहन करते हैं? उनकी आत्मायें क्यों इतनी प्रबल हो जाती हैं? वे मर कर भी कैसे जीवन का पाठ पढ़ाते हैं? इत्यादि दिल फड़काने वाली कहानियाँ पढ़नी हों तो "आहुतियाँ" आज ही मँगा लीजिये। मूल्य केवल ||।)

(११) जगमगाते हीरे—प्रत्येक आर्य संतान के पढ़ने लायक यह एक ही नयी पुस्तक है यदि रहस्यमयी, मनोरंजक, दिल में गुद गुदी पैदा करने वाला महापुरुषों की जीवन घटनायें पढ़नी हैं। यदि छोटी छोटी बातों से ही महापुरुष बनने की ज़रा भी अभिलाषा दिल में है तो एक बार अवश्य इस सचित्र पुस्तक को आप खुद पढ़िये और अपनी स्त्री बच्चों को पढ़ाइये। मूल्य केवल १)

(१२) पढ़ो और हँसो—विषय जानने के लिये पुस्तक का नाम ही काफ़ी है। एक एक लाइन पढ़िये और लोट पोट होते जाइये। आप पुस्तक अलग अकेले में पढ़ेंगे; पर सरेदू